अखंड हिन्दुस्तान

A. ✓

लेखक—श्री विशनदास देव
('मिलाप' सम्पादक)

—:o:—

प्रस्तावना-लेखक—
१—डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी
२—श्रीमान् राजा नरेन्द्र नाथ

1943 ✓

प्रकाशक—
त्रिवेदी एण्ड कम्पनी : लाहोर

प्रकाशक:—
उमाशङ्कर त्रिवेदी एम. ए.
त्रिवेदी एण्ड कम्पनी
चैम्बरलेन रोड,
लाहौर

प्रथम संस्करण : मूल्य २)

मुद्रक—
रूपरानी ढ्रेसर
सन्त प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर

भूमिका

एकता और प्रजातन्त्रवाद

यद्यपि लेखक ने इस पुस्तक का अङ्गरेज़ी अनुवाद भेजा था किन्तु बङ्गाल की राजनीति में ज्यादा मग्न होने के कारण मैं इस पर अच्छी तरह गौर नहीं कर सका। फिर भी इस पर सरसरी नज़र डालने से मुझे यह अनुभव हुआ है कि इसका मतलब असल में इस बात को प्रकाश में लाने का है कि भारतवर्ष का उद्धार राष्ट्रीयता में ही है। दो जातियों का सिद्धान्त सर्वथा अवास्तविक है। यद्यपि हिन्दुस्तान में भिन्न भिन्न जातियां और विचारों और विश्वासों के लोग रहते हैं किन्तु ऐसा होते हुए भी अब तक यह एक राष्ट्र रहा है और आगे भी इसे एक ही रहना चाहिए।

जहाँ तक मेरा अपना ख्याल इसके विषय में मैं अपने विचारों को कई वार व्यक्त कर चुका हूँ। मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान की नींव हिन्दुओं, मुसलमानों, बौद्धों के सैकड़ों वर्षों के सम्मिलित एका का फल है। जिसे पिछले २०० साल के अङ्गरेज़ी राज्य ने राजनीतिक तौर पर और भी मज़बूत बना दिया है। इसलिए मेरे विचार में अब असली प्रश्न भिन्न भिन्न राजनीतिक इकाइयों को, जो अब एक दूसरे से अलग हैं, "इण्डियन फेडरेशन" या "इण्डियन यूनियन" में मिलाने का नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान की सामाजिक और राजनीतिक एकता को कायम रख कर उसे ज्यादा मज़बूत और संगठित किये जाने का है। हिन्दुस्तान को कई स्वतन्त्र और स्वावलम्बी भागों में या ऐसे दो या इससे अधिक

स्वतन्त्र फेडरेशनों में-जिनकी अपनी अलग फौज, पुलिस और करेंसी हों, जिन्हें अन्य राष्ट्रों से बातचीत करने की पूरी स्वतन्त्रता हो और जो किसी मज़बूत और दृढ़ केन्द्रीय सरकार के आधीन न हों—बांट देने की किसी भी योजना का अर्थ हिन्दुस्तान की एकता और उसकी स्वतन्त्रता का अन्त कर देना होगा। ऐसी हालत में, जब कि मध्य यूरोप को छोटे २ राज्यों में विभाजित करने के विनाशकारी परिणाम, वर्तमान भीषण महायुद्ध के समय में मनुष्यता को नष्ट करते हुए हमारे सामने दिखाई पड़ रहे हैं, इस तरह की योजना को एक क्षण के लिए भी ख्याल में लाना सचमुच हैरान कर देने वाला है। इस विचार को क्रियात्मक रूप देने से भारत वर्ष न केवल स्वयं एक दूसरे के विरुद्ध षड़यन्त्रों का शिकार बन जायगा, बल्कि अन्य राष्ट्रों को भी षड़यन्त्र करने का अवसर मिल जायेगा।

मेरा विश्वास है कि प्रायः वे व्यक्ति, जो ६ करोड़ मुसलमानों के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार के आधार पर हिन्दुस्तान के बँटवारे की मांग करते हैं, इस प्रश्न पर कभी अच्छी तरह ध्यान नहीं देते; इसलिए मैं इस प्रश्न के इस पहलू को अच्छी तरह साफ़ कर देना चाहता हूँ।

मुसलमान, अपने लिए विभाजन के अधिकार की माँग इसलिए नहीं करते कि वे हिन्दुस्तान के किसी एक खास भाग में आबाद हैं, बल्कि इसलिए कि किसी किसी प्रांत में उन्हें बहुमत प्राप्त है। हिन्दुस्तान के प्रांतों की वर्तमान हदबन्दी की नींव—बोलचाल (भाषा), रहन-सहन, धार्मिक एकता नहीं है, फिर भी मुसलमानों की इस मांग का निर्णय इसी हदबन्दी के प्रकाश में ही हो सकता है। ऐसी हालत में निर्णय करने का

कौनसा आधार होगा; क्योंकि हिन्दुस्तान में कोई ऐसा प्रांत नहीं जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, और ऐंग इण्डियन आदि न बसते हों ? उदाहरणार्थ आप बङ्गाल और पञ्जाब को लें जिनमें क्रमशः हिन्दुओं तथा हिन्दुओं और सिक्खों की सम्मिलित जन-संख्या क्रमशः४४और४०प्रतिशत है। बङ्गाल की सारी आबादी ६ करोड़ है जिसमें ५२ प्रतिशत मुसलमान और ४४ प्रतिशत हिन्दू हैं। ऐसी हालत में किस तरीके और क़ानून के अनुसार ५२प्रतिशत मुसलमानों को ४४ प्रतिशत हिन्दुओं के भाग्य का फैसला और इण्डियन फेडरेशन से अलग करने का अधिकार दिया जा सकता है ?

आख़िर वह कौनसा कारण है कि हिन्दुस्तान के बँटवारे के विषय में फैसला करने का अधिकार केवल मुस्लिम-बहुमत वाली आबादी के प्रांतों को ही दिया जाय, विशेषतः ऐसी सूरत में जब कि उनमें भी भिन्न भिन्न धर्म और विचारोंके लोग हैं और उनमें बहुमत के जुल्म का वही सवाल मौजूद है जो हिन्दुओं और मुसलमानों की समस्या है। ऐसी अवस्था में आत्म-निर्णय का यह अवसर क्यों न सारे हिन्दुस्तान को दिया जाये—क्यों केवल एक ही व्यक्ति को या जाति को दिया जाये, क्यों न सारी आबादी के लोगों को इस बात का फैसला करने का अवसर मिल सके कि वे अपने प्रांत का बँटवारा चाहते हैं या नहीं ?

मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के बँटवारे से सांप्रदायिक समस्या हल करने का झंझट भी किसी तरह से भी पूरा नहीं होगा क्योंकि हिन्दुस्तान का कोई भी ऐसा प्रांत या हिस्सा नहीं होगा, जिसमें हिन्दू या मुसलमान रहते आये हों। बँटवारे की सूरत में इनके सामने हिन्दुस्तान की जातीयता का संयुक्त

आदर्श नहीं होगा। और चूंकि तथाकथित हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकारें धर्म के आधार पर बनी होंगी, इस लिए उनका पक्षपात अपनी अपनी धार्मिक सरकारसे होनेके कारण उनके मतभेद अधिक उग्र रूप में फिर उत्पन्न होंगे।

इससे उनके प्रांतों या इन दो फेडरेशनों में—गृह-युद्ध या एक दूसरे के प्रति अनुदार विचार पैदा होंगे। निश्चय ही किसी देश के भविष्य के लिए किसी खास सम्प्रदाय के लोगों को एक भाग में रखने का विचार रक्षा की कोई गारण्टी नहीं, बल्कि खतरनाक है; इसलिए पाकिस्तान की यह योजना जहां सम्मिलित रूप से हिन्दुस्तान के लिए लाभदायक नहीं, वहीं यह हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की भलाई के भी विरुद्ध है।

खुले शब्दों में यह कह देना काफ़ी होगा कि इस योजना का समर्थन करने वाले चाहे हिन्दुस्तानी हों या विदेशी वे लोग जानबूझकर या अनजाने भारत की उन्नति के शत्रु हैं। हमारे लिए यह ऐसा प्रश्न है जिसके बारे में कोई समझौता नहीं हो सकता और हर तरह के परिणामों की उपेक्षा कर इसके विरुद्ध अन्त तक लड़ाई जारी रखनी आवश्यक है। निस्सन्देह भारत की भलाई राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र में है और हमें इसी दृष्टिकोण को स्वीकार कर के आगे बढ़ना चाहिए।

कलकत्ता, २६ मार्च, ४३। डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी

———

प्रस्तावना

अखण्ड भारतवर्ष के जिस पवित्र और महान उद्देश्य को लेकर लेखक ने यह पुस्तक लिखी है वह प्रशंसनीय है। मुझे इस की प्रस्तावना लिखते हुए प्रसन्नता होती है। यह पुस्तक ठोस ऐतिहासिक घटनाओं पर लिखी गई है और इस में कोई शक नहीं कि इसको तैयार करने में नवयुवक लेखक ने बहुत परिश्रम और योग्यता का परिचय दिया है। प्रायः कोई भी ऐसा विषय नहीं जिस पर इसमें विचार न किया गया हो।

मैं लेखक के इस कथन से पूरा सहमत हूँ कि हमारे देश में इस समय जो साम्प्रदायिक स्थिति पाई जाती है वह वस्तुतः दो ही बातों का परिणाम है। प्रथम भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार की कूट-नीति और दूसरी कांग्रेस की ग़लती। भारतवर्ष के बँटवारे की मांग ब्रिटिश सरकार की उस नीति का स्वाभाविक परिणाम है जिसकी नींव उसने १६०६ में सांप्रदायिक संरक्षण के रूप में रक्खी थी, और जिसके सम्बन्ध में भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास के लेखक श्री यूसफ़ अली ने अपनी पुस्तक के २६८ वें पृष्ठ पर यह टिप्पणी की है।

"१६०६ में आगाखां और ढाके के नवाब सलीमउल्ला खां की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई (जिसे आगामी मिंटो मार्ले सुधारों को दृष्टि में रखते हुए कायम किया गया था) जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्मिलित प्रतिनिधित्व को नष्ट कर मुसलमानों को भारतवर्ष की साधारण राजनीति से अलग कर दिया और इस तरह दो सम्प्रदायों के बीच एक चौड़ी खाई खोद दी। इसके अतिरिक्त इस सिद्धांत को एक बार अपनाने के बाद अधिक

से अधिक विस्तार दिया गया और इसी सिद्धांत को दूसरे सम्प्रदायों के हितों के लिये भी बरता गया। परिणाम यह हुआ कि भारत की राजनीति एक अजीब गोरखधंधा बन गयी। हम इस सिद्धान्त की आवश्यकताओं और उसके भिन्न २ पहलूओं पर नहीं बल्कि भारतवर्ष में राजनीतिक आदर्शों की उन्नति के ऊपर पड़ने वाले इसके प्रभावों पर विचार कर रहे हैं।

कांग्रेस की भूल यह थी कि इसने १६१६ में अल्पमत वालों के लिए अलग राजनीतिक अधिकारों का सिद्धांत स्वीकार करके विभाजन के विचारों को उत्साहित किया। दूसरी भूल उसकी यह भी थी कि उसने हिन्दू मुस्लिम मिलाप के लिये उपयुक्त अवसर पैदा न करके मुसलमानों की मित्रता खरीदने की नीति अपनाई।

जहाँ तक पाकिस्तान की मांग का प्रश्न है यह सरासर निराधार और बिलकुल अक्रियात्मक है। सब से पहले बहुमत और अल्पमत के दृष्टिकोण को लीजिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान भारतवर्ष की सब से बड़ी अल्पजाति है किन्तु इसके साथ ही ऐसी अल्पमत वाली जातियाँ भी हैं जो फेडरेशन में या संयुक्त भारतवर्ष में तो अल्पमत में है, किन्तु दूसरे प्रान्तों में उन्हें बहुमत का स्थान भी प्राप्त है। इसके विरुद्ध हिन्दू जो भारतवर्ष की आबादी का ३/४ भाग हैं अनेक प्रान्तों में अल्पमत में हैं अर्थात् उनका स्थान संयुक्त भारतवर्ष में कुछ प्रान्तों में बहुमत की अवस्था में है।

अब आप देश की वर्तमान शासन-व्यवस्था का अध्ययन करें तो आपको ज्ञात होगा कि प्रान्तीय शासन इसका एक खास अंग

है और जहाँ उस के केन्द्रीय शासन में अल्पमत को सांस्कृतिक और धार्मिक संरक्षण दिये गये हैं वहाँ प्रान्तों में भी।

इसीलिये इन संरक्षणों को प्रान्तीय शासन में भी वही महत्व प्राप्त है जो केन्द्रीय शासन में। प्रान्तीय शासन में इन संरक्षणों का महत्व इस कारण कम नहीं हो जाता कि प्रांत का कोई अल्पमत फैडरेशन में बहुमत का स्थान रखता है। फेडरेशन का बहुमत किसी तरह भी प्रांतीय शासनों पर प्रभाव नहीं डालता, इसी विचार से मैंने सर क्रिप्स योजना के विषय में "माडर्नरिव्यू"एक लेखमें लिखा था कि अगर ब्रिटिश सरकार मुस्लिम बहुमत के प्रान्तों को हिन्दुस्तानी यूनियिन से पृथक रखने का अधिकार देती है तो इस प्रान्तीय बहुमत के सम्बन्ध में उसका रवैया क्या होगा? और यदि प्रांतीय सरकार अल्पमतोंके न्याययुक्त अधिकारों को स्वीकार करनेसे इन्कार करे या फेडरेशन का बहुमत फेडरेशन के अल्पमत की न्याययुक्त मांग को अस्वीकार कर दे तो उस स्थिति में क्या होगा?

ऐसा मालूम होता है कि सरक्रिप्ससे भेंट करने वाले किसी भी राजनीतिक नेता ने यह सवाल उनसे नहीं पूछा और न ही मेरे विचारमें किसी प्रेस के प्रतिनिधि ने इस विषय की विवेचना चाही। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि इण्डियन यूनियन से प्रान्तों की पृथकता का अधिकार स्वीकार कर लिया गया तो केवल उन चार प्रान्तों के अलग होने की ही सम्भावना होगी जिनमें मुसलमान बहुमत में हैं। अर्थात् पञ्जाब, बङ्गाल, सिन्ध और सीमाप्रांत। यदि उन्होंने पृथकता पर जोर दिया तो इन में से कुछ के अल्पमतों की ओर से नई सीमा बन्दी की मांग स्वाभाविक होगी। क्योंकि इस अवस्था में इन प्रान्तों के हिन्दू अल्पमतों के

हित की रक्षा का सवाल वैसे ही ज़रूरी होगा जैसे भारतवर्ष में दूसरी अन्य जातियों और अल्पमत के न्यायसंगत अधिकारों की रक्षा का है। इसके अतिरिक्त सबसे आवश्यक प्रश्न जिसकी ओर इस पुस्तक के लेखक ने भी निर्देश किया है रियासतों का होगा। खास कर उन रियासतों का जिनके महाराजे या नवाब हिन्दू या मुसलमान हैं, परन्तु उनकी अधिक आबादी मुसलमान या हिन्दू है, और मैं दृढ़ता से कह सकता हूँ कि यदि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में भारतवर्ष में दो फेडरेशन बनें तो रियासत के शासकों का भी अलग फेडरेशन बनाना होगा।

साथ ही इस बात की आशंका भी है कि रियासतों के शासक अपने लिए अलग फेडरेशन की मांग करें। रियासतों और ब्रिटिश भारत के भिन्न २ आर्थिक और सामाजिक स्थिति के कारण उनमें इतना मेल नहीं हो सकता जितना रियासतों में अपने अन्दर हो सकता है। ऐसी अवस्थामें रियासतों के शासन के लिए अलग फेडरेशन की मांग को ठुकराना मुश्किल होगा। वास्तविकता यह है कि विभाजन की भावना छूत की बीमारी है जैसा कि परिस्थितियों से स्पष्ट है। पञ्जाब के बँटवारे की मांग हमारे सामने है। इस के अतिरिक्त कुछ दिन हुए अछूतों की नागपुर कान्फ्रेन्स में एक प्रस्ताव द्वारा अछूतों के लिए अलग प्रदेश की मांग भी की जा चुकी है, ऐसी अवस्था में क्या यह आवश्यक नहीं कि बँटवारे की इस दुर्भावना को बढ़ावा देने के बदले रोका जाय।

आत्मनिर्णय का अनुचित उपयोग भी किया जा सकता है। यदि उसे अन्त तक ले जाया जाय तो यह स्वार्थपरता और मिथ्याभिमान की ओर ले जाता है—और यही अवस्था भारतवर्ष में हो रही है।

विश्वास और सहयोग नागरिक जीवन के लिए ज़रूरी हैं। इन्हीं दो बातों की भारतवर्ष को आवश्यकता है। बहुमत और अल्पमत के प्रश्न का इसके सिवा और कोई हल नहीं। मैं यह भी कह दूँ कि यह कहना कि भारतवर्ष में दो जातियाँ आबाद हैं बिलकुल असत्य है। मैं यह तो मानता हूँ कि यहां दो 'हिट्रोजेनस' विभिन्न दल आबाद हैं लेकिन जब दूसरे देशों में भिन्न भिन्न दल रह सकते हैं तो हिन्दू और मुसलमान भी विश्वास और सहयोग की भावना के साथ रह सकते हैं।

बहुमत और अल्पमत के प्रश्न को विभाजन की दृष्टि से देखते हुए भी आर्थिक प्रश्नों की भी अवहेलना नहीं की जा सकती—इस सिलसिले में नीचे लिखे हुए विषयों में कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी।

ऐसी रेलवे लाईनों को जो भिन्न २ राजनीतिक नियन्त्रण के अधीन प्रदेशों से गुज़रती हों नियन्त्रण में रखने का प्रबन्ध करने की बात अलग है और एक ऐसे देश की लाइन के नियन्त्रण को जिसके लिए कभी इस बात का ध्यान भी न किया गया हो विभाजित किये जाने की बात और है। महादेश यूरोप के भिन्न २ देशों में और रियासती और वर्तमान ब्रिटिश भारत में चलने वाली रेलों के अन्तर को ही लीजिये। नौर्थ वैस्टर्न रेलवे के लिये, जो तथाकथित पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों से गुज़रती है, हिन्दुस्तान अम्बाला और देहली के बीच के हिस्से के लिये खर्च करने को कभी तैयार न होगा। इस सिलसिले में मैं हिन्दुस्तानी रेलों के बारे में रेलवे बोर्ड की १९३९–४० की रिपोर्ट जिल्द प्रथम पृष्ठ २५ से निम्नलिखित उद्धरण देता हूँ।

"यह बात विशेष दिलचस्पी का कारण है कि पिछले १६ वर्षों में जिनके ६ साल ज्यादा खुशहाली के थे सरकार को ७ रेलों से काफ़ी लाभ हुआ है । २६ करोड़ रु० ईस्टइन्डियन रेलवे से, २४½ करोड़ रु० बी० बी० एंड. सी. आई. रेलवे से, ६ करोड़ साऊथ इण्डिन रेलवे से, ७ करोड़ बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे से, ५½ करोड़ मद्रास एंड सदर्न मरहठा रेलवे से, ४½ करोड़ नार्थ वेस्टर्न रेलवे से और २ करोड़ लखनऊ-बरेली से। इसके विपरीत सरकार को ५ रेलों से घाटा हुआ और सबसे अधिक हानि ३० करोड़ की थी जो नार्थ वेस्टर्न रेलवे के (Stratagic) (फ़ौजी) सेक्शन से हुआ (वह हिस्सा जो खास कर पाकिस्तानी सीमा से गुजरता है) इस तरह दूसरा बड़ा नुकसान १८ करोड़ का था जो बंगाल नागपुर रेलवे से हुआ। तीसरा नुकसान ७½ करोड़ का आसाम बंगाल रेलवे से हुआ। ईस्टर्न बंगाल और ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे से मिलसिलेवार ८ करोड़ और ८२ लाख का नुकसान हुआ।

स्पष्ट ही है कि घाटे की रेलें पाकिस्तान के हिस्से में ही आयेंगी। वर्मा की सुरत में इस तरह की कोई कठिनाई नहीं थी, क्योंकि वर्मा की रेलों का हिन्दुस्तान की रेलों से कोई सम्बन्ध नहीं था। डाक, तार, व टेलीफोन को इतनी कठिनाई नहीं होती जितनी रेलों की होती है।

अब ऋण के बटवारे का सवाल लीजिए भारत सरकार ने जितना ऋण लिया है उसका अधिकांश विशेषतः तथाकथित पाकिस्तान की तरक्की के लिए ही था, इसलिए हिन्दुस्तान के बट-वारे की सूरत में इसका बोझ पाकिस्तान को ही बर्दाश्त करना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त यदि यहाँ दो फेडरेशन बने तो अनिवार्य रूपमें इन दोनों की दो फ़ौजें भी अलग अलग होंगी । १६४०—४१ के बजट के अनुसार १३१७३६५००० रु० की आमदनी के आधे से कुछ कम हिस्सा फौज पर खर्च किया गया । किन्तु पूरे तौर पर ट्रेंड और कील-कांटों से लैस दो फौजों का मतलब यह होगा कि हिन्दुस्तान की सारी आमदनी ही इन पर खर्च होगी और सम्भव है कि ब्रिटिश साम्राज्य की सरकार इन फेडरेशनों को गृह-युद्ध से रोकने के लिए भारतवर्ष में एक मज़बूत सेना रखने का भी फैसला करे। इस तरह हिंदुस्तान के ग़रीब लोगों को तीन फौजों का खर्च सहन करना पड़ेगा, और यह बोझ इन्हें कुचल देगा, क्योंकि इन्हें और भी कई प्रबन्धों के लिए दुगना खर्च करना पड़ेगा।

आखिर, पाकिस्तान का मतलब क्या है ?

मुसलमानों के लिए 'होमलैंड' मनवाना बिलकुल निराधार है। क्या इसका मतलब यह है कि हिन्दू अल्पमत के प्रान्तों में रहने वाले मुसलमानों का इस समय कोई होमलैंड नहीं। यहां हमें एक प्रमुख मुसलिम लीगी की इन नुक्ताचीनियों को भी याद रखना चाहिए। पाकिस्तान से इन (मुसलमानों) का ध्येय एशिया के तमाम इसलामी देशों को मिलाना है और जैसा कि ६ अगस्त १६४२ के 'सिविल एंड मिलटरी गज़ट' में 'पाकिस्तानी खिलाफ़त' के शीर्षक से प्रकाशित एक लेख में लिखा गया है, "वह (मुसलमान) सरकार की सहायता से इस्लामिक संस्थाओं को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। उनकी जद्दोजहद खास अक़ीदों का नतीजा है। इस समय इस्लामिक संगठन को पूर्वी हिन्दू और जो दूसरे गुप्त प्रभाव तबाह कर रहे हैं। वह उन्हें समाप्त करना चाहते हैं। पाकिस्तान के सम्बन्ध में उनका विचार इस्लाम के सिद्धांतों पर

दुनियां में इनक़लाब लाने का है। जीवन के संबन्ध में उनका दृष्टि-कोण तबलीग का है।"

ऐसी अवस्था में मि० राज गोपालाचार्य को इस पोज़ीशन से बहुत हैरानी होती है जो कि उन्होंने पाकिस्तान के संबन्ध में अख्तियार कर रखी है। ऐसा मालूम होता है कि राजा जी हिन्दुस्तान के सारे इतिहास को भूल गए। देश के विभिन्न भागों में बट जाने पर हर जगह बाहरी हमलों का खतरा है और पाकिस्तान तो है ही घरेलू युद्ध का बीज। अगर गृह-युद्ध में सांप्रदायिक प्रश्नों के सुलझाने का मार्ग होता तो मुझे इसमें कोई आपत्ति न थी, किन्तु मुझे अन्देशा यह है कि हमारा गृह-युद्ध देश से बाहर की शक्तियों को फिर भारत पर हमला करने की प्रेरणा करेगा।

ग्रंथकार का यह कहना ठीक है कि मनुष्य के जन्म-सिद्ध अधिकारों की रक्षा की घोषणा ही आज अधिक महत्व रखती है। योरोप के संपूर्ण देशों के विधान में यह घोषणा अंकित है और यही हिन्दुस्तान में हो सकता है। भारतवर्ष का यथार्थ लाभ संप्रदायिकता और उसके आधार पर बने हुए सांप्रदायिक बंटवारे (कम्युनल एवार्ड) की समाप्ति में है।

एक शब्द आज़ाद पंजाब के संबन्ध में भी और वह यह कि जिस दृष्टि से भी इस पर विचार किया जाय आज़ाद पंजाब की राजनीति बिल्कुल नंगी है, इससे पश्चिमी पंजाब के हिन्दुओं व सिक्खों की अवस्था भिखारियों से भली न होगी।

(राजा) नरेन्द्रनाथ

निवेदन

बड़ी हिचकिचाहट के बाद मैंने "आज़ाद पंजाब" और "पाकिस्तान" के विषय में अपनी कलम उठाने का निश्चय किया है। इस समय भी जब कि मतिष्क में विचारों की आंधी सी आ रही है कलम रुक रुक कर चल रही है। क्योंकि मैं डरता हूँ कि कहीं यह पुस्तक किसी दल विशेष में भ्रम उत्पन्न करने का कारण न बने। और मेरा ध्येय नष्ट न हो जाये, जिस के लिए मैंने ऐसा करने का निश्चय किया है। इस संदेह का कारण एक तो भारतवर्ष की वर्तमान राष्ट्रीय उथल पुथल है और दूसरा यह कि इससे पहले पंजाब के विभाजन के संवन्ध में कुछ कहा और लिखा जा चुका है। उससे ऐसी अवस्थाएं उत्पन्न हो गईं। इसी विचार से मैंने पाठकों की सेवा में कुछ निवेदन करना आवश्यक और उचित समझा है।

मैं पाठकों को पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि इस किताब के लिखने में मेरा विचार किसी प्रकार से भी किसी दल या संस्था का विरोध करने का नहीं है। यद्यपि भारत को वर्तमान अवस्था के संवन्ध में मेरा दृष्टकोण कुछ और ही है किन्तु इतने पर भी इस पुस्तक को सर्वथा निष्पक्ष रूप से लिखने का निश्चय किया है।

प्रस्तुत पुस्तक लिखते हुए मेरे सम्मुख केवल तीन विचार हैं, एक तो यह कि अपनी स्वाधीनता की लड़ाई में हम जो भूलें पहले कर चुके हैं, अब उनसे लाभ उठाते हुए आगे उनकी आवृत्ति न करें। दूसरे यह कि इस समय हमारे देश में विभाजन और फूट की जो विचार-धारा काम कर रही है उसको जड़मूल से मिटा दिया जाये, क्योंकि इस विचार-धारा में भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन का सत्यानाश छिपा हुआ है। इसके द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति का वह आन्दोलन जिसके लिए हमने आज तक इतना वलिदान दिया है, केवल एक स्वप्न रह जावेगा। तीसरा यह कि तथाकथित 'स्वतंत्र

पंजाब, की योजना उपस्थित किये जाने के बाद एक ओर हिन्दुओं और सिक्खों में और दूसरी ओर खुद सिक्खों में बिना कारण ही जो स्थायी झगड़े पैदा हो गये हैं, उन्हें समाप्त किया जा सके, साथ ही मुस्लिम लीगने जो राष्ट्रीयता को विनाश करनेवाली योजना उपस्थित कर रखी है उसे सम्मिलित विरोध द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जावे।

पाकिस्तान या दूसरे राजनीतिक षड़यन्त्रों के विरोध के लिए मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब कि हमारी विशाल हिन्दू जाति सामाजिक एकता की अटूट लड़ी में पिरोई जायेगी, जब कि जाटों और ग़ैर जाटों, सिक्खों और ग़ैर सिक्खों और ग़ैर आर्यसमाजी और सनातनी में, अछूत और सवर्ण में कोई अन्तर न होगा। वह सब एक मंच पर समानता-पूर्वक इकट्ठे होंगे और इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ज्यों ही ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई त्योंही न 'पाकिस्तान' की आवाज़ सुनाई देगी और न 'आज़ाद पञ्जाब' की और 'पान इस्लामिज्म' (इस्लाम के फैलाव) की योजना अपने आप मर जायेगी और हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का वह स्वप्न जिसकी पूर्णता के प्रयत्न में हम प्यासे हिरन की तरह रेत को ही पानी समझ कर अन्धाधुन्ध दौड़ जा रहे हैं आप ही आप ओझल हो जायेगा। उस समय कोई भी शक्ति भारत माता को दासता की बेड़ी में जकड़ कर न रख सकेगी। दासता की बेड़ियां स्वयं कट जायेंगी और स्वतन्त्रता की सांस लेती हुई भारत माता कह उठेगी।

"You quarelled and parted and I was dying. You have united and come back, I am happy"

अर्थात् मेरे सपूतो जब तुम लड़ लड़ कर जुदा हो रहे थे मैं मर रही थी अब तुम मिल जुल कर वापस आ गए हो तो मैं प्रसन्न हूँ।

अखण्ड भारत

पहला अध्याय

ब्रिटेन की पालिसी

"I should advice Simon to see at all stages all people who are not bycotting the commission, particularly Muslims and Depressed classes, I should widely advertise all his interviews with representative Muslims. The whole policy is now obvious. It is to terrify the immence Hindu population by the apprehension that the commission is being got hold of by the Muslims, and may present a report all together distructive to Hindu position there by securing solid Muslim support and having Jinnah high and dry" (Letter of Lord Birkenhead which he wrote as Secretary of State for India to Viceroy at the time of Royal Commission explaining the policy of divide and rule."

मैंने ऊपर लार्ड बरकेन हेड के एक पत्र का कुछ भाग उद्धृत किया है, उसके विषय में विस्तृत रूप में आगे चल कर लिखूंगा, यहां इतना ही कहना चाहता हूँ कि हमारे देश में इस समय पाकिस्तान इत्यादि के सम्बन्ध में जो सांप्रदायिक मतभेद पाया जाता है उस का न केवल प्रारम्भिक उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर है बल्कि उसने अपनी कम्यूनल पालिसी के द्वारा बिना कारण ही भारतवर्ष के विभिन्न दलों में साधारण

रूप से और मुसलमानों में विशेष रूप से राष्ट्र के विभाजन की भावना उत्पन्न की है; बल्कि एक प्रकार से उसकी जन्मदाता भी वही है।

मुस्लिम लीग की ओर से पाकिस्तान और केन्द्र में ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व की मांग ब्रिटिश सरकार की कम्यूनल पालिसी का ही आवश्यक परिणाम है, जिसकी नींव १६०६ ई० में सांप्रदायिक बँटवारे के रूप में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन और उसकी राजनीतिक एकता को दुर्बल बनाने के लिए रखी गई थी। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व ने मुसलमानों में यह दुर्भाव भरा कि उनका हित भारतवर्ष के सम्मिलित राजनीतिक आन्दोलन की उन्नति में नहीं, बल्कि उससे अलग है और उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विशेष संरक्षणों की आवश्यकता है। यही कुविचार था जिसने धीरे धीरे बढ़ बढ़ कर पाकिस्तान का रूप ग्रहण किया है। वह प्रथकृता के विचारों की प्रारम्भिक अवस्था थी।

अब मैं इस पालिसी के विभिन्न भागों का वर्णन करूंगा। यद्यपि इसके सम्बन्ध में कुछ लिखने की आवश्यकता न थी, क्योंकि यह "फोड़ो और शासन करो" (Devide and rule) के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है। किन्तु एक तो इस कारण से कि यह पालिसी ही पाकिस्तान और आज़ाद पंजाब जैसे नारों का एक मात्र कारण है और दूसरे इसलिए भी कि सर्वसाधारण में इसकी पोल खुल जाने पर भी यह अब तक पूरी तत्परता से प्रचलित है मैंने इसका उल्लेख आवश्यक समझा है। भारतवर्ष में जब अंग्रेजी राज्य आरम्भ हुआ उस समय उसकी पालिसी भारतीयों के धार्मिक विश्वासों को न छेड़ने की और संसार के अन्य भागों में जो नवीन विचार-धारायें उत्पन्न हो रही थीं उनसे अनजान रखने की थी। किन्तु जब धीरे धीरे अनेक सुधारों के आन्दोलनों के बाद यह

पालिसी अधिक समय तक न चल सकी तो इसे ज़मींदार और किसानों के प्रश्न का रूप दे दिया गया। इसके अतिरिक्त एक ऐसा पूंजीवादी दल उत्पन्न करने का यत्न किया गया जो भारत वर्ष में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ों को सुदृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध हो। परन्तु सन् १८५७ ई० की असफल क्रान्ति के बाद उसमें बुनियादी तबदीली की गई।

अब एक ओर तो सेना में लड़ाकू और गैरलड़ाकू जातियों का नाम दिया गया है—और दूसरी ओर यह प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न वर्गों के सांप्रदायिक विश्वासों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काया जाय और ऐसी अवस्था उत्पन्न की जाये कि हिन्दू और मुसलमान सम्मिलित रूपमें उसके विरुद्ध संगठित न हो सकें। अतः इस विषय में सब से पहले बङ्गाल के विभाजन का पग उठाया, जिसमें बंगाल के हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर सम्बन्धों को इतना संकुचित कर दिया गया कि अब तक सुधर न सके, किन्तु फिर भी भारतवर्ष के जातीय जीवन में हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से फोड़े रखने की वर्तमान कूटनीति को स्थायी रूप सन् १६०६ में दिया गया और यथार्थ बात तो यह है कि भारतवर्ष के वर्तमान दुर्भाग्य के दिन उसी वर्ष से आरम्भ होते हैं। यह वह वर्ष है जब कि मुसलमानों ने भारतवर्ष के इतिहास में प्रथम बार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, धार्मिक संरक्षण और भारत की केन्द्रीय कौंसिल में साम्प्रदायिक बँटवारे की माँग की। इस के लिये आन्दोलन करने के विचार से ही ढाका के नवाब साहब की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी। यद्यपि यह माँग सर आगा खाँ के संरक्षण में एक मुस्लिम डेपुटेशन द्वारा ब्रिटिश सरकार से की गयी थी, किन्तु यदि इस डेपुटेशन की

असलियत का सबूत आवश्यक हो तो वह स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद अली के उन शब्दों में मिलता है जो उन्होंने १६२३ में एक भाषण देते हुए कहे थे। उन्होंने कहा—"......प्रिन्सिपल आर्चीवाल्ड के मारफ़त एक मुसलमानी वफ़द (प्रतिनिधि-मण्डल) तैयार कराने का इन्तज़ाम किया गया। इस वफ़द के मुतालबात (माँगें) उनकी तमाम तफ़सील, और ऐड्रेस का मसविदा भी इसी प्रिन्सिपल ने तैयार किया, जिसे इस वफ़द के ज़रिये वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल डनलप स्मिथ के रूबरू पेश करना मक़सद (अभीष्ट) था। चुनांचे जब यह सब कुछ हो चुका तो इन मुतालबात को एक ख़त के साथ दस अगस्त सन् १६०६ को नवाब मुहसन मुल्क के पास भेजा गया। इस के बाद एकम अक्टूबर को शिमला से हिदायत आने पर सर आगाख़ाँ की रहनुमाई में वह वफ़द (डेपूटेशन) वायसराय लार्ड मिण्टो से मिला, और उन के रूबरू अपने मतालबात पेश किये। वायसराय ने इन मतालबात को वज़ीर हिन्द लार्ड मार्ले के मसविरा के बग़ैर मंज़ूर कर लिया।" इस से भी बड़ा और पुष्ट प्रमाण हमारे पास ब्रिटिश सरकार के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय रैमज़े मैक्डानल्ड का है जिन्होंने इस डेपूटेशन का उल्लेख करते हुए कहा है—"कुछ ऐंग्लो-इण्डियन अधिकारियों ने इन मुस्लिम लीडरों को शह दी, और उन्होंने ही शिमला और लंडन में तार हिला हिलाकर मुसलमानों को विशेष रियायतें देने के बहाने हिन्दुओं और मुसलमानों में अविश्वास का बीज बोया।" ❋

❋ देखिये प्रिन्सिपल गुरमुख निहालसिंह प्रेज़ीडेण्ट 'इण्डियन पोलिटिकल साइंस कान्फ्रेन्स' का ऐड्रेस, जो उन्होंने आगरा में पढ़ा।

यह है हिन्दू-मुसल्मानों के मत-भेदों का प्रारम्भिक कारण, जिसका ढिंढोरा आज सारे संसार में पीटा जा रहा है। यही नहीं, ब्रिटिश पार्लियामेंट के मेंबर मि० रावर्ट महात्मा गांधी के सम्बन्ध में लिखी हुई अपनी पुस्तक 'नंगा फ़कीर' में 'अखिल भारतीय मुस्लिम कांन्फ्रेन्स' के १६३१ के इजलास के विषय में, जो दिल्ली में हुआ था, अपनी सम्मति देते हुए लिखते हैं—"मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि इस कांफ्रेंस में मि० चर्चिल के साथ मेल-जोल उत्पन्न करने का प्रस्ताव रक्खा गया था, जिसका उद्देश्य यह था कि इंगलैंड की चर्चिल-पार्टी और हिन्दुस्तान की मुस्लिम पार्टी के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाय। उस दिन दोपहर पीछे मैं मैडन होटल में मुस्लिम लीडरों की एक पार्टी में भी सम्मिलित हुआ। उस में जो बात-चीत हुई उस का विषय चर्चिल से हेल-मेल उत्पन्न करना भी था।"*

इन शब्दों के बाद इस बात का भी सन्देह होता है कि कहीं यही इतिहास आज भी अपने आप को न दोहरा रहा हो। विशेष कर इस अवस्था में, जब कि मि० ऐडवर्ड थामसन की गवाही मेरे पास मौजूद है। वह अपनी पुस्तक 'भारत को स्वतन्त्र करो' में लिखते हैं, "मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि इस ख्याल में काफी हद तक सचाई है कि गोलमेज़ कान्फ्रेन्स के समय ज़िद्दी मुसलमानों और ब्रिटेन के उन राजनीतिक क्षेत्रों में जो प्रजातन्त्र के अधिक विरुद्ध हैं कोई समझौता हो चुका था। +

और अन्त में ब्रिटिश पार्लियामेंट के ऊंची चोटी के उस मेंबर की भविष्यवाणी सही सिद्ध हो रही है जो उसने अपनी पुस्तक "नंगा फ़क़ीर" में आल इण्डिया मुस्लिम कान्फ्रेन्स से प्रभा-

---

* पृष्ठ २७६। + पृष्ठ ५०।

वित होकर उनके आधार पर ही १६१० की गोलमेज़ कान्फ्रेन्स का ज़िकर करते हुए की थी। ये साहब लिखते हैं—"अगर यह गोलमेज़ कान्फ्रेन्स असफल रही तो इस बात का भय है कि हिन्दुस्तान भी सचमुच दूसरा आयरलैंड बन जायगा और बहुत सम्भव है कि अगले तीन वर्षों में ही हिन्दुस्तान के गर्म दल वाले और नरम दल वाले (राइटर विंग और लेफ्ट विंग वाले) ही साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित हो जावें। यद्यपि ऐसा होना बहुत भयानक बात होगी, किन्तु यह कठिन नहीं है।* पार्टियाँ तो साम्प्रदायिक लाइनों पर बंट गईं मगर क्या हिन्दुस्तान भी आयरलैंड बनेगा। यद्यपि मैं इस विषय में कोई भविष्यवाणी करना नहीं चाहता, परन्तु इतना कह देना चाहता हूँ कि यदि ऐसा हुआ तो केवल हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि सारी दुनियां के लिए तबाही का कारण होगा। योरोप के बल्कान प्रदेशों के कारण जैसा भयानक युद्ध हमारे सामने लड़ा जा रहा है, ऐसा ही भयानक युद्ध हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के कारण भी लड़ा जायगा।

मगर हां, मैं हिन्दुस्तान में ब्रिटिश कूटनीति का ज़िकर कर रहा था, इस समय तक मैंने बीती हुई बातों के कुछ उदाहरण दिये थे। किन्तु आपके लिये यह जानना भी दिलचस्पी से खाली नहीं होगा कि वर्तमान भी भूतकाल से भिन्न नहीं। इस अध्याय के प्रारम्भ में मैंने अंगरेज़ी की जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, वह लार्ड बरकेनहेड के एक पत्र से ली गई हैं। जो सन् १६२७ ई० में भारत मन्त्री थे। यह पत्र उन्होंने साईमन कमीशन के समय ब्रिटिश पार्लियामेंट के सम्बन्ध में वायसराय को लिखा था। यदि आप इस पत्र का सतर्कता से अध्ययन करेंगे तो आपको भली भाँति विदित हो जायगा कि आज भी इस पालिसी में रत्ती भर भी

---

* पृष्ठ २८०

अन्तर नहीं आया। इस पत्र में वायसराय को लिखा गया है "मैं साईमन कमीशन को सलाह दूँगा कि वह हर हालत में उन्हीं आदमियों से मुलाक़ात करे जो कमीशन का वायकाट नहीं कर रहे। मैं मुसलमानों के प्रतिनिधियों से होनेवाली मुलाक़ातों का जबर्दस्त प्रापेगैंडा कराऊँगा। हमारी पालिसी जाहिर है और वह है हिन्दुस्तान की हिन्दू आबादी को भयभीत करने की—उनमें यह सन्देह उत्पन्न करने की कि कमीशन पर मुसलमान छाये जा रहे हैं और कहीं ये ऐसी रिपोर्ट न पेश कर दें जो हिन्दुओं के लिए हानिकारक हो। इस तरह जहाँ हमें मुसलमानों का सुदृढ़ समर्थन प्राप्त होगा, वहाँ जिन्ना का रवैया भी कठोर और सुदृढ़ रहेगा।"

यह तो हुई सन् १९२७ की बात। किन्तु अभी आज से एक वर्ष पहले ही सर स्टेफर्ड क्रिप्स द्वारा इस बात को फिर दुहराया गया है। यह निश्चित बात है कि ब्रिटिश सरकार कम से कम युद्ध के दिनों में तो भारतवर्ष को कुछ भी देने को तैयार नहीं, इसके साथ ही वह यह भी नहीं चाहती कि कोई उसके इस दावे को झुठला सके कि वह इस युद्ध को प्रजा-तन्त्र और स्वाधीनता की रक्षा के लिए लड़ रही है। इसीलिए उसने पिछले वर्ष सर स्टेफर्ड क्रिप्स को एक स्कीम के साथ भारतवर्ष भेजा था और मेरा विश्वास है कि उस स्कीम का आशय भी वही था जिसका वर्णन लार्ड बरकेनहेड ने अपने पत्र में किया था। इस स्कीम में पाकिस्तान के कीटाणु डालने का कारण एक यह था कि इस बात से हिन्दुओं को भयभीत किया जाय (जैसा कि सामूहिक जुर्मानों के द्वारा किया जा रहा है) कि ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान को स्वीकार करनेवाली है, जिससे वे भयभीत हो कर उस के विरोध को ढीला कर दें। दूसरा कारण यह था कि न हिन्दू इसे

स्वीकार करें और न ही उसे कुछ देना पड़े और दुनियां के सामने भी वाहवाही लूट लें और यथार्थ में यही सब हुआ भी।

यह तो थी क्रिप्स नाटक की तस्वीर। अब मैं आप के सामने उसके बाद की एक और तस्वीर रखना चाहता हूँ जो अभी सर्व-साधारण के सामने नहीं आई है। इस तस्वीर का पूरा पता मुझे कानपुर के हिन्दू अधिवेशन पर चला और उस को प्रमाणित किया हिन्दू सभा की समाप्ति के बाद मि० राजगोपालाचार्य, स्व० मि० अल्लाबख्श (सिन्ध के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री), मि० आर्थर मूर (स्टेटस्मैन के भूतपूर्व सम्पादक), सर श्री निवास शास्त्री, और अन्त में डा० सैय्यद अब्दुल लतीफ़ (हैदराबाद) ने अपने बयानों से। इनमें उन्होंने पाकिस्तान के सम्बन्ध में हिन्दू सभा के प्रस्ताव पर निराशा प्रकट की। किन्तु साधारण जनता नहीं जानती कि उपरोक्त महानुभावों की निराशा का कारण क्या है, इसलिए मैंने उस बात को प्रकाश में लाना ही आवश्यक समझा है।

सच्ची बात यह है कि जब सर स्टैफर्ड क्रिप्स का मिशन असफल रहा और वह वापस चले गए तो मि० राजगोपालाचार्य ने इस भ्रम से कि यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग समझौता कर के ब्रिटिश सरकार से राष्ट्रीय सरकार की मांग करें तो वह इसे अस्वीकार न कर सकेगी (यद्यपि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने स्पष्ट कह दिया था कि यदि भारतवर्ष के सम्पूर्ण राजनीतिक दल सम्मि-लित रूप से भी मांग करें तो भी ब्रिटिश गवर्नमैंट इस स्कीम से आगे नहीं जा सकेगी।) मुसलमानों को केन्द्र में ५० प्रतिशत सीटें देकर और पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करने के आधार पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता कराने की कोशिश की। इसी आशा पर उन्होंने मद्रास असेम्बली के मेम्बरों से

पाकिस्तान के पक्ष में प्रस्ताव पास कराया और उसे इलाहाबाद में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में भी उपस्थित किया। यद्यपि वह उसे स्वीकार कराने में असफल रहे फिर भी अपने प्रयत्नों में लगे रहे। मि० जिन्ना से भी वह कई बार मिले और कहा जाता है कि पाकिस्तान के सम्बन्ध में उन दोनों के बीच कोई समझौता भी हो गया अथवा राजा जी मि० जिन्ना से कोई अन्तिम निर्णय प्राप्त करने में सफल हो गये। अब वह अपने मिशन में पूरी सफलता प्राप्त करने के लिए जेल में महात्मा गांधी से भेंट करना चाहते थे; किन्तु वायसराय ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार न किया। इससे यद्यपि उन्हें निराशा हुई, किन्तु इस पर भी उन्होंने प्रयत्न करना न छोड़ा। इस के बाद इलाहाबाद में सर तेज़बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक निर्दल कांफ्रेन्स हुई जिस में अन्य अनेक महानुभावों के अतिरिक्त राजा जी भी सम्मिलित हुए। इस कांफ्रेन्स की संपूर्ण कार्यवाही को गुप्त रखा गया और अभी तक गुप्त है। किन्तु जैसा मुझे कानपुर में मालूम हुआ और जैसा ये बयान संकेत करते हैं, जिन का वर्णन ऊपर किया गया है, इस कांफ्रेंस में राजा जी, मि० जिन्ना से हुई अपनी बात-चीत के प्रकाश में, इस तजवीज़ के साथ बंगाल और पञ्जाब के विभाजन पर पाकिस्तान को स्वीकार कराने में सफल हो गए कि उस के विषय में विभिन्न सामूहिक संस्थाओं की सम्मति मालूम की जाय। इस तजवीज़ के विषय में जहां तक मुस्लिम लीग के रवैये का सम्बन्ध है मि० के० एम० मुन्शी (बम्बई के भूत-पूर्व गृह-मन्त्री) के एक लेख के आधार पर जो उन्होंने अपने पत्र 'सोशल वेलफेयर' में लिखा था कहा जासकता है कि मि० जिन्ना एक बार बङ्गाल और पञ्जाब के अल्पमतों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने के लिये तैयार हो गये थे। वैसे भी जब स्व० सर

सिकन्दर हयात ने अपना फारमूला पेश किया तो उस समय पञ्जाब के राजनीतिक क्षेत्रों में भी इस बात की विशेष चर्चा थी कि इस फारमूला का असली मतलब यह है कि चूंकि मि० जिन्ना पाकिस्तान की मांग ढ़ीली करके सांप्रदायिक समझौता करने को तैयार हैं इसलिए सर सिकन्दर यह फ़ारमूला तैयार कर इस समझौते की वाह वाही लूटना चाहते हैं। इस तज़वीज़ और इस फ़ारमूला का जो परिणाम हुआ उस से मुझे कोई मतलब नहीं, जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि जब यह सब कुछ हो रहा था तब गवर्नमेंट को यह आशंका हुई कि कहीं, इस भय से कि ब्रिटिश सरकार क्रिप्स स्कीम के द्वारा पाकिस्तान को स्वीकार कर चुकी है, हिन्दू इस फारमूला को मंजूर न कर ले, और हिन्दू मुसलमान कोई सम्मिलित मांग उपस्थित करने में सफल न हो जायं; यद्यपि यह उसका केवल भ्रम था। किन्तु चोर की दाढ़ी में तिनका—अब इसी सन्देह के आधार पर मि० एमरी ने अकबर की बरसी के लिए होनेवाली एक सभा में भाषण करते हुए 'अखण्ड भारत' का समर्थन किया और वायसराय ने कलकत्ता में 'एसोशिएटेड चेम्बर्ज़ आफ़ कामर्स' के जलसे में हिन्दुस्तान की भौगोलिक एकता का राग आलापा। इस सारी दास्तान की तसदीक़ देहली के पत्रकारों की उन खबरों से भी होती है जो उन्होंने वायसराय के इस भाषण से कुछ ही दिन पहले भेजी थीं, जिन में कहा गया था कि पाकिस्तान का आन्दोलन जिस सीमा पर पहुँच गया है गवर्नमेंट उसे पसन्द नहीं करती, और अब उसके विरुद्ध ऐलान होने वाला है। इतना ही नहीं बल्कि मि० जिन्ना के अखबार "डान" ने भी वायसराय के इस भाषण से कुछ दिन पहले एक सम्पादकीय लेख में जिस का शीर्षक था "दाल में कुछ काला" (Something fishy) इस आशंका का उल्लेख

किया है, अतः यद्यपि इस बार गवर्नमेंट ने अखण्ड हिन्दुस्तान के नाम पर हिन्दुओं को बच्चों की तरह बहका दिया किन्तु यथार्थ में उसकी बुनियादी पालिसी वही है जिस का मैंने प्रारम्भ में वर्णन किया है। पाकिस्तान और अखण्ड भारत तो उसके समय समय के राग हैं। लेकिन इन साधारण घटनाओं के होते हुए भी मैं हिन्दुस्तान की वर्तमान सांप्रदायिक अवस्था के लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट को उत्तर-दायी नहीं मानता, शासन-कर्ता के नाते उनका ऐसा करना स्वाभाविक और आवश्यक है और यदि वह अपनी इस पालिसी में अब तक सफल होती रही और हो रही है तो यह उसकी चालाकी और नीतिकुशलता और हम हिन्दुस्तानियों की अदूर-दर्शिता और चारित्रिक दुर्बलता का परिणाम है। कहा जाता है कि काठ की हांडी बार बार नहीं चढ़ा करती, लेकिन शायद हिंदुस्तान पर यह कहावत लागू नहीं होती। ब्रिटेन की "फोड़ो और शासन करो" की पालिसी को भली भाँति समझते हुए भी हम अभी तक उसका शिकार होते जा रहे हैं। अभी तक इस बात के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते जिनसे प्रगट हो कि इससे बचने की कोशिश की जा रही है। हैरानी तो इस बात से होती है कि मि० जिन्ना इस बात पर अभी तक ब्रिटिश सरकार से पाकिस्तानी तोहफ़े की आशा लगाए बैठे हैं और उनके इस रवैये का प्रभाव यह पड़ रहा है कि आज विभिन्न राजनीतिक दल स्वाधीनता की मांग के प्रश्न को पीछे फेंक कर ब्रिटेन से एक दूसरे की अपेक्षा ज्यादा अधिकार प्राप्त करने की दौड़ में लगे हुए हैं। सम्भवतः इसी अवस्था को देखते हुए सुप्रसिद्ध लेखक जान गन्थर ने अपनी पुस्तक 'एशिया के अन्दर' (Inside Asia) में लिखा है "Britain conquered India, but with manppower suplied by India."(ब्रिटेन ने भारतवर्ष को विजय किया किन्तु भारतवासियों की जनशक्ति के द्वारा) काश कि हम इस सचाई को समझें

दूसरा अध्याय

कांग्रेस की भूल

"In 1916 the Indian National Congress cut the very ground under its feet by accepting a basis of unity which was a negation of Nationalism and Democracy–its two great ideals and committed the blunder of entering into compitition with the British Government for buying the friendship of the Muslim Community a compitition in which the Congress was bound to lose as the negotiations culminating in the Communal Award of 1932 and those attempted since the out-break of the present war have shown" And farther—"To me the present demands of the Muslim League appear as the natural and inevitable-consequence of accepting the principle (by Congress) that there are important seperate political rights and interests of the various Communities that require protection. It was inevitable that the various Communities should organise themselves on Communal lines and demand their seperation from one or other. (Principal Gurumukh Nihal Singh, President Indian Political Science Conference)

महात्मा गाँधी नज़रबन्द हैं और अन्य कांग्रेसी कार्यकर्ता भी जेलों में कैद हैं, ऐसी अवस्था में जी नहीं चाहता कि किसी प्रकार नुक्ताचीनी की जाय, किन्तु चूँकि हिन्दुस्तान को महान् बनाने और ऊँचा दिखाने का आदर्श सब का साझा काम है, इस लिए यह भावना मेरी राह में बाधक नहीं हो सकती।

जहाँ तक देश की वर्त्तमान साम्प्रदायिकता का संबन्ध है निस्संदेह ब्रिटिश गवर्नमेंट और हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिक लोग ही ज़्यादातर जिम्मेवार हैं। लेकिन कांग्रेस को भी निर्दोष करार नहीं दिया जा सकता। कांग्रेस ने अपनी ज़िन्दगी में आरंभ से कई भूलें की हैं जिनके लिए उसे क्षमा किया जा सकता है, किन्तु उनमें से दो ऐसी हैं जिनके लिए उसे आनेवाला कोई भी इतिहासज्ञ क्षमा नहीं करेगा; खास कर ऐसी अवस्था में जब कि वह उन्हें फिर दुहरा रही है। सबसे पहली ग़लती, जिसे कि मैंने प्रिंसिपल गुरुमुख निहालसिंह, प्रेज़ीडेंट इण्डियन पोलिटिकल साइंस कांफ्रेंस, के ज़रिए अंग्रेज़ी में ऊपर दर्ज किया है, यह थी कि उसने १९१६ में लखनऊ पैक्ट के ज़रिये साम्प्रदायिक मिलाप के वास्ते उस बुनियादी नियम को माना जो उसके दो उच्च आदर्शों—प्रजातन्त्र और राष्ट्रीयता-के एकदम विरुद्ध था। ऐसा करके उसने खुद अपने पाँवों पर कुल्हाड़ा चलाया। इसके अलावा उसने सब से बड़ी भूल उस वक्त की जब उसने मुसलमानों की दोस्ती खरीदने के लिए ब्रिटिश सरकार के मुकाबले में नीलाम की बोली में हिस्सेदार बनना मंजूर किया, क्योंकि यह एक मुकाबला था जिसमें कांग्रेस को हार खाना ज़रूरी था; जैसा कि इस योजना से जो १९३२ में कम्यूनल एवार्ड के समय रखी गई और इन कोशिशों से जो इस युद्ध के शुरू होने के बाद उपस्थित की गई, जाहिर है"। ऐसा करके उसने खुद अपने हाथों से इस सांप्रदायिकता को जमा दिया, जिस के मुकाबले में आज वह अपने आप को लाचार पाती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब कांग्रेस स्थापित हुई तो उसे हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ करने में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सरकार की ओर से तो ख़ैर ये कठिनाइयां पैदा की ही जाती थीं, किन्तु मुसलमानों की ओर से भी हुईं। वह एक तो यह कि मुसलमानों ने १८८० तक अंगरेज़ी शिक्षा का बहिष्कार किया; जिसकी वजह से वह शिक्षा और अन्य अवस्थाओं में हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत पीछे रह गए। इसलिए उनका यह आचरण जहां उनकी वर्तमान अवनति का कारण बना जिसके लिए आज हिन्दुओं को दोषी ठहराया गया, वहाँ इसका परिणाम यह भी हुआ कि कांग्रेस लीडरशिप के भूखे हिन्दुओं के हाथों में चली गई; जिसके लिए आज इसे 'हिन्दू कांग्रेस' कहा जाता है। कांग्रेस को दूसरी ओर बड़ी मुश्किल सर सैयद अहमद की ओर से हुई।

सर सैयद अहमद ने १८५७ के ग़दर के बाद मुसलमानों की भलाई का काम शुरू किया और इसके लिए उन्होंने अंगरेजों और मुसलमानों में दोस्ती का प्रचार किया। इस सिलसिले में उन्होंने कई पत्र भी निकाले, पैम्फ़लेट लिखे और कई संस्थाएँ स्थापित कीं—अलीगढ़ में कालेज भी खोला—इन सब का उद्देश्य मुसलमानों में ग्रुप बाज़ी (दलबन्दी) और जातीय मेल का प्रचार करने के अलावा उन्हें ब्रिटिश सरकार के प्रति स्वामि-भक्त बनाने का भी था। परन्तु इतना होते हुए भी वह काफी दिनों तक हैसियत के अनुसार सारे हिन्दुस्तान के हर राष्ट्रीय कार्य की भी हिमायत करते रहे। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि जब १८८५ में कांग्रेस स्थापित हुई तो वह उससे पहले ही अलीगढ़ कालेज के उस अंगरेज़ प्रिंसपिल बेक के प्रभाव में आ चुके थे, जिसे हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार का एक स्तम्भ ख़याल किया जाता है। इस प्रिंसपिल ने सर सैयद अहमद

को एक सच्चे धर्मभक्त से बदल कर फिरकापरस्त बना दिया। परिणामतः वह हिन्दुस्तान की इस साम्प्रदायिक एकता के इतने कट्टर शत्रु बन गए कि इसमें भाग लेना तो दूर इसका विरोध करने के लिए उन्होंने बनारस के राजा शिवप्रसाद के साथ मिल कर एक संस्था स्थापित की और मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रखने की कोशिश की। ऐसी अवस्था में कांग्रेस के लिए दो ही रास्ते खुले थे—एक तो यह कि वह हिन्दू नेशनेलिज्म को ही अपना कर हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई को चलाती। दूसरा रास्ता यह था कि अगर उसे इण्डियन नेशनेलिज्म को या हिंदुस्तानी कौमियत को अपनाना था तो बजाय इसके कि वह मुसलमानों को जाति के नाम पर साम्प्रदायिक एकता में भाग लेने की दावत देती, हिन्दू-मुस्लिम एकता का कोई ठोस फारमूला तैयार करती या मुस्लिम जनता से आर्थिक आधार पर अपील करती; और इस सिलसिले में कोई ऐसी योजना तैयार करती जैसी कि कुछ वर्ष हुए पं० जवाहर लाल नेहरू ने मुस्लिम जनता से सम्बन्ध पैदा करने के लिये तैयार की थी। मुझे विश्वास है कि अगर आरम्भ में इस प्रकार की स्कीम पर कार्य किया जाता तो भविष्य में इतने दिनों के बाद वर्तमान असफलता का सामना न करना पड़ता। यह ठीक है कि शुरू शुरू में मुस्लिम जनता को राष्ट्रीय आंदोलन की ओर अग्रसर करने में उसे कई रुकावटों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता, मगर आखिरकार इसकी सफलता अवश्यम्भावी थी। किन्तु अगर ऐसा न भी होता तो हिन्दुस्तान की राजनीति में कम से कम वे कठिनाइयाँ और उलझनें पैदा न होतीं जो इस समय पैदा हो चुकी हैं। कांग्रेस ने इन दोनों रास्तों को छोड़ कर एक तीसरे रास्ते पर चलना पसन्द किया, जिसे मैं "शार्ट कट" कहता हूँ। इसने मुसलमानों को धर्म के नाम पर,

जैसा कि खिलाफत के आन्दोलन से जाहिर है, राष्ट्रीय आंदोलन की ओर मोड़ने की पालिसी पर अमल किया। इस तरह इसने मुस्लिम जनता को खास तौर पर यह विचार दिया कि असल में हिन्दुओं और मुसलमानों के हित बिलकुल पृथक् पृथक् हैं, और उनकी भलाई इसी में है कि वह अलग अलग रहें। ब्रिटिश सरकार ने तो भारतवर्ष में अपना शासन बनाये रखने के लिये हिन्दुओं और मुसलमानों में मतभेद करना आवश्यक समझा ही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने मुसलमानों को शासन-कार्यों में साम्प्रदायिक आधार पर अधिक अधिकार और संरक्षण आदि प्रदान करने का लालच दिया। यदि कांग्रेस गवर्नमेंएट की इस पालिसी पर ध्यान न देती, और उसको बिलकुल अवहेलना करती हुई विभिन्न सम्प्रदायों के उन लोगों को ही साथ लेते हुए जो केवल राष्ट्रीय-हित की भावना से उसमें सम्मिलित हुए थे, अपने आन्दोलन को जारी रखती, तो भी वह इस अवस्था का सामना करने में सफल हो सकती थी। खेद के साथ कहना पड़ता है कि उसने इसके ठीक विरुद्ध उपाय काम में लाया। इस प्रकार जहाँ उसने मुसलमानों में सौदाबाजी की भावना उत्पन्न की वहाँ गवर्नमेएट को भी अधिक दृढ़ता और सरगर्मी के साथ यही पालिसी ग्रहण करने में सहायता दी। अंत में ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न कर दीं जिनके कारण उसे हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था कहा जाने लगा। वह ऐसी है या नहीं, यह प्रश्न दूसरा है, किन्तु यह एक सचाई है कि जब वह साम्प्रदायिक आधार पर मुस्लिम लीग जैसी संस्था से बात चीत करती है तो सरीहन अपने आप को उसकी सतह पर ले आती है। उसने ऐसा एक बार नहीं अनेक बार किया है और आज यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इस समय देश के राजनीतिक और राष्ट्रीय जीवन में मुस्लिम

लीग को जो महत्व प्राप्त है वह यथार्थ में कांग्रेस की उन भूलों का ही परिणाम है। खेद की बात यह है कि यद्यपि प्राकृतिक रीति से कांग्रेस को पग पग पर ठोकरें लगीं, इतनी कि वह अपनी भूलों का अनुभव करे, फिर भी हर वार उनका असर उलटा हुआ और उन कड़वे अनुभवों से लाभ उठाने के बदले उसने भूलों पर भूलें कीं, जिनका क्रम अभी तक चला जा रहा है।

कांग्रेस ने सब से पहली और बड़ी भूल सन् १९०९ के मिएटो मार्ले सुधारों के अनुसार मुसलमानों के लिये सांप्रदायिक संरक्षण स्वीकार करने में की, जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं में क्रोध और विरोधी विचारों की भावना दौड़ गई और वे यह अनुभव करने लगे कि गवर्नमेंट की नीति तो उनके विरुद्ध है ही किन्तु कांग्रेस के हाथों में भी उसके अधिकार सुरक्षित नहीं। कांग्रेस के इस राष्ट्रीयता विरोधी काम ने हिन्दुओं में इतनी अप्रसन्नता पैदा कर दी कि स्वर्गीय लाला लालचन्द ने जो डी० ए० वी० कालेजकमेटी के सब से पहले प्रधान थे 'पंजाबी' नामक पत्र में 'राजनीतिक आत्मघात' शीर्षक से लगभग ३० लेख लिखे, जिनमें हिन्दुओं को ब्रिटिश सरकार की हिन्दू विरोधी नीति और कांग्रेस की मुसलमानों के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति के विरुद्ध सचेत किया। इसके अतिरिक्त इसी विषय में बंगाल के लेफ्टिनेएट यू० एन० मुकर्जी ने 'मरती हुई जाति' नाम की एक पुस्तक लिखी। इन दोनों बातों ने भारतवर्ष की राजनीति में हलचल सी मचादी और अन्त में परिणाम यह हुआ कि जहाँ १९०६ में गवर्नमेंट की छाया में मुसलिम लीग स्थापित हो चुकी थी, अब कांग्रेस की इस भूल से १९१० ई० में अमृतसर में हिन्दू सभा स्थापित की गई, जिसे बाद में बनारस में अखिल भारतीय रूप देकर फिर से सुदृढ़ बनाया गया। कांग्रेस को मुसलमानों की मित्रता भी प्राप्त न हुई और कुछ

हिन्दू भी अप्रसन्न होकर अलग हो गये। किन्तु कांग्रेस ने अपने इस अनुभव से भी लाभ नहीं उठाया और अपनी पिछली नीति पर ही चलती रही। अतएव सन् १६१६ ई० में उसने मुसलमानों की मित्रता मोल लेने की दौड़ में प्रजातन्त्र और राष्ट्रीयता के अपने दो बड़े सिद्धान्तों के मूल्य में मुस्लिम लीग से साम्प्रदायिक आधार पर समझौता कर लिया और इस प्रकार सन् १६०६ ई० में सरकार ने जिस योजना की नींव रक्खी थी उसे कांग्रेस ने स्वयं ही पूरे का पूरा स्वीकार कर लिया। लेकिन मजे की बात यह है कि इतना महँगा मूल्य चुकाने के बाद भी वह अपने कार्य-साधन में असफल रही, क्योंकि सरकार ने १६१६ के सुधारों में मुसलमानों को उस से भी अधिक अधिकार दे दिये जितने कांग्रेस ने लखनऊ पैक्ट में देने स्वीकार किये थे। शायद इसीलिये इस लखनऊ पैक्ट के संबन्ध में किसी ने ठीक कहा है कि उससे हिन्दुओं और मुसलमानों में समझौता हुआ या नहीं, अंग्रेज़ों और मुसलमानों में ज़रूर हो गया।

इसके बाद १६२१ ई० में खिलाफ़त का युग आता है। खिलाफ़त के संबन्ध में मुसलमानों में मज़हबी जोश देकर कांग्रेस ने इस मौके को ग़नीमत समझा और इस अवसर को मुसलमानों को कांग्रेस की ओर आने की प्रेरणा करने के लिये प्रयोग किया तथा खिलाफ़त आन्दोलन का समर्थन करके वह भूल की जिसका संशोधन आज असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खिलाफ़त आन्दोलन के दिनों में हिन्दू मुसलिम मेल का संतोष-जनक दृश्य दिखाई दिया था, किन्तु यह सब कुछ उसी समय के लिए और क्षणिक सिद्ध हुआ, क्योंकि इसका आधार भी क्षणिक जोश मात्र था। किन्तु, आपको मालूम हो या नहीं कि, इसी खिलाफ़त आंदोलन के तुरन्त पश्चात् भारतवर्ष के दो विभिन्न भागों में दो भयानक

साम्प्रदायिक झगड़े हुए जिनका उदाहरण आज तक कहीं नहीं मिलता। यथार्थ बात तो यह है कि कांग्रेस ने मुसलमानों के अन्दर एक ऐसे मज़हबी जनून को हवा दी जिसका परिणाम स्वभावतः यही हो सकता था; विशेष कर उस अवस्था में जब कि एक ऐसे आधार पर मुसलमानों में जोश उत्पन्न किया गया जिसे 'पैन इस्लामिज़्म' की जड़ या नींव कहा जा सकता है। मानों कांग्रेस ने अकारण ही उस विचार के पनपने में सहायता दी जो आज भारतीय मुसलमानों के एक दल में पर्याप्त स्थान प्राप्त कर चुका है।

अब ज़रा आगे चलिए—सन् १६२६-३५ तक के वर्ष भारतवर्ष के इतिहास में बहुत बड़ा महत्त्व रखते हैं। इस अरसे में कई वर्षों के लिए भारत के भाग्य का अन्तिम-निर्णय हो गया है और इस बात का पक्का प्रमाण मिल गया है कि कांग्रेस ने मुसलमानों की मित्रता मोल लेने के लिए गवर्नमेंट के साथ जो दौड़ लगाई थी उसमें उसकी सफलता की कोई आशा नहीं। इस अरसे में मि० जिन्ना की सुप्रसिद्ध चौदह शर्तें आईं। रायल कमीशन ने हिन्दुस्तान का दौरा किया। प्रिन्स आफ़ वेल्स आए, गोलमेज़ कान्फ्रेन्स हुईं, मुस्लिम लीग के मुकाबले में आज़ाद मुस्लिम कान्फ्रेन्स स्थापित हुई, इलाहाबाद में एकता कान्फ्रेन्स हुई। इन सब में कांग्रेस ने क्या क्या भूलें कीं यह एक लम्बी कहानी है। इसलिए मैं केवल इलाहाबाद की एकता-कांफ्रेन्स और सन् १६३२ की गोलमेज़ कान्फ्रेन्स पर ही विचार करूँगा, क्योंकि इनका सीधा सम्बन्ध मेरे इस निबन्ध से है। जहाँ तक इलाहाबाद की एकता कान्फ्रेन्स का सम्बन्ध है, भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में वह एक बहुत बड़ी घटना है। यह पहला अवसर था जब कि हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधि आपस के मतभेदों का ठीक या

ग़लत निर्णय कर सके और ऐसा मालूम होने लगा कि अब हिन्दुओं और मुसलमानों में अवश्य समझौता हो जाएगा और भविष्य में इस प्रकार के मतभेदों का अवसर न आयगा। किन्तु दुर्भाग्य से यह आशा कुछ ही दिनों बाद निराशा में बदल गई और वह पैक्ट भी जिसे अनेक क्षेत्रों में सच्चा पैक्ट समझा जाता है ट्रैजेडी (दुखान्त) होने से न बच सका। ज्यों ही ब्रिटिश गवर्नमेंट को इस बात का पता चला कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को केन्द्र में ३२ प्रतिशत सीटें देना स्वीकार कर लिया है और सिन्ध के हिन्दू अल्पमत को विशेषाधिकार देकर साथ ही केन्द्र से किसी प्रकार की सहायता न दिये जाने की शर्त पर, बम्बई से उस की पृथकता स्वीकार कर ली गई है तो भारत मन्त्री सर सैम्युलहोर ने तुरन्त उसके बाद पार्लियामेंट में घोषणा की कि सम्राट की सरकार ने यह निर्णय किया है कि मुसलमानों को ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जाए, सिन्ध को अलग सूबा बना दिया जाय और उसे केन्द्र से पर्याप्त सहायता दी जाय। बस फिर तो इस घोषणा ने उस नेशनल पैक्ट की क़ब्र खोद दी। अब यद्यपि यह भली भाँति सिद्ध हो गया था कि कांग्रेस अपनी इस पालिसी में गवर्नमेंट से किसी अवस्था में भी जीत नहीं सकती, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि वह अपने पिछले अनुभवों के आधार पर अपना पग पीछे हटाने के बदले कोरे चेक का अपना अन्तिम दाव भी लगा देना चाहती थी, इसीलिए सन् १९३२ की गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में नए सिरे से हिन्दू मुसलमानों के साम्प्रदायिक प्रश्न को खड़ा किया गया और जब उस के सुलझने का कोई प्रयत्न न हो सका तो महात्मा गांधी ने वह दाव भी लगा दिया। आपने अपने हस्ताक्षरों से एक कोरा काग़ज़ मुसलमान प्रतिनिधियों के हवाले कर दिया और कह दिया "जो कुछ लेना चाहते हो इस पर लिख लो

मुझे मंजूर होगा" मगर ब्रिटिश गवर्नमेंट भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली। मि० रैमजे मैकडानल्ड (भारत मन्त्री) ने मुसलमान प्रतिनिधियों को लिख भेजा, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि कांग्रेस ने मुसलमानों को कोरा चेक दे दिया है लेकिन उसे किस बैंक से भुनाया जायगा? ब्रिटिश गवर्नमेंट से तुम्हें जो कुछ मिलेगा वह एक तो नक़द मिलेगा, और दूसरे यदि चेक भी मिला तो एक नहीं सैकड़ों बैंकों से उसे भुनाया जा सकेगा। इसलिये जब असफलता हुई तो 'कम्युनल एवार्ड' की लानत का तौक़ बिना कारण स्वीकार कर लिया गया कि शायद अब भी मुसलमान खुश हो जायँ। मगर 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की'। इस कम्युनल एवार्ड की लानत ने जहां कांग्रेस को वह दिन दिखाया जब कि वह हिन्दू जिन्होंने अपने रक्त से कांग्रेस को पाला पोसा था उससे मुँह मोड़ने लगे। सन् १९३४ के चुनाव में बङ्गाल और पञ्जाब में उसकी ऐसी हार हुई जो कि कांग्रेस के इतिहास में सदा के लिए स्मरण रहेगी। मुझे तो इस बात का भी विश्वास है कि सन् ३४ के प्रान्तीय चुनाव में यदि पं० जवाहरलाल नेहरू कम्युनल एवार्ड का स्पष्ट शब्दों में विरोध न करते तो कम से कम हिन्दू अल्पमतों के प्रान्तों में यही इतिहास दुहराया जाता। कांग्रेस ने केन्द्रीय कौंसिल में तटस्थ रह कर कम्युनल एवार्ड को पास कराने में सहायता दी उससे भारतवर्ष को कितनी हानि हुई और हो रही है आज यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस कम्युनल एवार्ड के कारण मि० जिन्ना की शर्तों की संख्या १४ से बढ़कर २१ हो गईं। फिर केन्द्र में ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व की मांग आई और अब उसका परिणाम पाकिस्तान हमारे सामने है। इस कम्युनल एवार्ड ने हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय एकता में कितनी

रुकावट डाली है और उसके राष्ट्रीय जीवन को कितना खराब किया है इस सम्बन्ध में कुछ न कहना ही अच्छा होगा।

इस कम्युनल एवार्ड के कारण हिन्दू मुस्लिम एकता के वहम ने हमारे भीतर जो घबराहट (Comfusion) पैदा की है उसे आज कहने की आवश्यकता नहीं। 'बेकार मबाश कुछ किया कर' के सिद्धांती कम्युनिस्ट, रैडिकल और दूसरे कई दल बन गए हैं और सारी देश-भक्ति का निचोड़ हिन्दू मुस्लिम एकता और कांग्रेस-मुस्लिम लीग समझौता का नारा लगाने में ही है। यद्यपि इस अवस्था से भी कभी कभी निराशा होती है लेकिन खुशी की बात इतनी हैं कि गांधी जी जो आज से कुछ समय पहले स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को आवश्यक समझते थे अब ऐसा नहीं समझते। अब तो वह कहते हैं कि स्वराज्य प्राप्त होने के बाद ही हिन्दू मुस्लिम ऐक्य होगा। सो इसीलिए उन्होंने अपने व्रत के सिलसिले में वायसराय से जो पत्र-व्यवहार किया, उस में विभिन्न दलों के समझौते के सम्बन्ध में वह लिखते हैं, "पार्टियाँ अपने प्रतिनिधित्व का प्रमाण दिये बिना ही बरसाती मेंढक की तरह बन जाती हैं। गवर्नमेंट भी अपने स्वभाव वश उन का स्वागत करती है। यदि वे ज़बानी जमा-खर्च से आज़ादी का दम भरें और कांग्रेस की सरगर्मियों का विरोध करें। ऐसी अवस्था में दलों में समझौते की सूरत में गवर्नमेंट जो भी पेशकशी करेगी उसमें निराशा का होना पुरानी बात है। ऐसी अवस्था में 'हिन्दुस्तान से निकल जाओ' की मांग पहले करना स्वाभाविक है। केवल ब्रिटिश शासन की समाप्ति अर्थात भारत के राजनीतिक जीवन में बुनियादी तबदीली के आने और परतन्त्रता से छुटकारा पाने के बाद ही सच्चे अर्थों में प्रतिनिधि शासन की स्थापना सम्भव हो सकती है। चाहे

यह गवर्नमेंट स्थायी हो या अस्थायी। हिन्दुस्तान की विभिन्न पार्टियों के सम्बन्ध में महात्मा गांधी की यह शर्त पढ़कर मुझे अंगरेज़ी के एक कवि की ये पंक्तियाँ याद आ रही हैं जो शायद ऐसे अवसर के लिए ही कही गई थीं।

"........Took truce with tyrants and grew tame.

And gathered cast crowns and creeds to wear,

And racks and shards reguilded."

भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन में गांधी जी के असफल रहने का कारण यही एकता (Unification) की नीति है, जिसका अनुभव वह अब कर पाए हैं। खेद केवल इतना है कि वह अभी तक इस बात को न समझ सके थे।

अब कांग्रेस की दूसरी भूल की ओर आइए—वैसे तो यह भी पहली का ही एक भाग है और मैं इस का कुछ वर्णन पहले भी कर आया हूँ—किन्तु क्योंकि यह वर्तमान अवस्था पर सीधा असर डालती है, इसलिये इस पर कुछ और विचार करना आवश्यक होगा। वह भूल प्रिन्सिपल गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में यह है—"मेरे विचार में मुस्लिम लीग की वर्तमान माँगें कांग्रेस की ओर से यह सिद्धांत स्वीकार किए जाने का स्वाभाविक परिणाम हैं कि विभिन्न सम्प्रदायों के कुछ अलग राजनीतिक अधिकार और हित हैं जिनकी रक्षा आवश्यक है। इस सिद्धान्त के स्वीकार किए जाने का परिणाम यही होना था कि विभिन्न सम्प्रदाय साम्प्रदायिक आधार पर अपने आप को संगठित करते और एक दूसरे से पृथक होने की माँग करते।"

शायद पाठक यह सोचेंगे कि अल्पमतों को संरक्षण आदि की सुविधाएँ देना कोई भूल नहीं—क्योंकि उन के अधिकारों की रक्षा

के लिये इस प्रकार की गारंटी देना आवश्यक है। किन्तु इस प्रसंग में आप इस बात को ध्यान में रखिये कि संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं जहां अल्पमतों को साम्प्रदायिकता के आधार पर अलग अधिकार दिये गए हों। यदि उन्हें कोई अलग अधिकार या संरक्षण प्राप्त भी हैं तो वह धार्मिक और सांस्कृतिक हैं। राजनीतिक अधिकार देश में रहने वाले हरेक व्यक्ति के लिए एक ही हैं और एक ही होने चाहिए। कांग्रेस के लिए भी यही उचित था कि वह देश-वासियों को विशुद्ध राष्ट्रीयता के नाम पर स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ने की अपील करती; और उन्हें यह स्पष्ट कर देती कि हिन्दुस्तानी होने के नाते उन सब के अधिकार—हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सब के लिए समान होंगे। यदि कांग्रेस ऐसा करती तो हिन्दू-हित, मुसलिम-हित और सिख-हित आदि का कोई झगड़ा ही नहीं रहता। वह खाई इनमें उत्पन्न ही नहीं होती जो बीच में आने के कारण इन सब को फोड़ हुए हैं। वैसे भी कांग्रेस के लिए राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार यही उचित था। कांग्रेस के दूसरे मार्ग पर अमल करने के दो परिणाम हुए। एक तो यह कि जब साम्प्रदायिक आधार पर मुसलमानों के अलग राजनीतिक हित स्वीकार कर लिए गए तो सिक्खों ने अपने अलग अधिकारों की माँग की। अछूतों और दक्षिणी-भारत के अब्राह्मणों ने भी यही किया—इस के अतिरिक्त इन सब ने अपने इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए साम्प्रदायिक लाइनों पर अपना संगठन शुरू कर दिया। अतएव कांग्रेस जिस साम्प्रदायिकता का अन्त करना चाहती थी वह और अधिक बढ़ गई। दूसरा परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस ने सम्प्रदाय के आधार पर पृथक राजनीतिक अधिकार का सिद्धांत स्वीकार कर के एक प्रकार से देश को यह विचार दिया कि स्वतन्त्र भारत में

साम्प्रदायिक शासन (Communal State) होगा—अर्थात इसमें हिन्दू बहुमत का राज्य होगा। यद्यपि वह भारतीय राष्ट्रीयता को अपना कर समस्त भारतीयों की एक सम्मिलित जाति बनाने का प्रयत्न कर रही थी, और स्वतन्त्र भारत के सम्बन्ध में उस का यथार्थ और बुनियादी सिद्धांत (National State) राष्ट्रीय शासन था, और अब भी है। यदि कांग्रेस अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सीधे और लम्बे रास्ते पर ही चलती तो मुझे विश्वास है कि वह अब तक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो गई होती, क्योंकि यद्यपि यह मार्ग लम्बा था, तब भी इस में न कोई दुर्गम घाटी थी न कोई भूल-भुलैयाँ। इस मार्ग पर चल कर दूसरे देशों के लोग अपने लक्ष्य पर कभी के पहुँच चुके हैं—यद्यपि उनके राष्ट्रीयता आन्दोलन में भाग लेने वालों की संख्या कांग्रेस के अनुयायियों से कहीं कम थी। किन्तु उन्होंने संख्या की पर्वाह नहीं की, न इस बात की ही चिन्ता की कि कोई उन के साथ आता है या नहीं, न वह किसी के पास हाथ-पैर जोड़ने गए। उन का नारा था—'यदि आप आएँ तो आप के साथ, यदि आप न आएँ तो आप के बिना, यदि आप विरोध करें तो उस के होते हुए भी हम अपनी स्वाधीनता की लड़ाई लड़ते जायँगे।' मिश्र का उदाहरण आप के सामने है। उस का राष्ट्रीयता आन्दोलन न्यूनाधिक उन्हीं परिस्थितियों से गुज़रा है जिन से—कांग्रेस गुज़र रही है। वहाँ भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने वही चालें चलीं जो वह यहाँ चल रही है। ईसाइयों के बहुत बड़े अल्पमत को मिश्री मुसलमानों के बहुमत के विरुद्ध और दूसरे विभिन्न दलों को एक-दूसरे के विरुद्ध उभाड़ा गया है। किन्तु वहाँ वफ़द पार्टी ने उन के इस जाल में फँसने से इन्कार कर दिया। और परिणाम यह हुआ कि वहाँ 'फोड़ो और शासन करो' की भेदनीति

असफल रही। इस के विरुद्ध इंडियन नेशनल कांग्रेस में दुर्बलता आ गई। उस ने अपने उच्चादर्श को प्राप्त करने के लिए ऐसा मार्ग अपनाया जो शार्टकट होने के कारण खतरनाक था। कहा जाता है कि क्रांति कराने वाली पार्टी के लिए दो उपाय आवश्यक होते हैं। एक तो वह हर समय सरगरम रहे। दूसरे यह कि वह सब्र से काम ले। किन्तु कांग्रेस ने पहली बात को तो अपनाया, दूसरी को नहीं। उस ने अपनी मंज़िल पर जल्द पहुँचने के लिए छोटा किन्तु पेचीदा मार्ग अपनाया। और ज्यों-ज्यों वह इस पर चलती गई त्यों-त्यों उस के विरोधियों में हिन्दू बहुमत के शासन का भ्रम बढ़ता गया, जिसका परिणाम दो राष्ट्रों का सिद्धांत (Theory) अर्थात् पाकिस्तान हमारे सामने है।

जो बात हमारे सामने अधिक खेदजनक है वह है बम्बई का वह प्रस्ताव, जिस में इंडियन यूनियन के यूनिटों (इकाइयों) को अलहदगी का अधिकार दिया गया है। यद्यपि मैं इस प्रस्ताव को अधिक महत्व नहीं देता, क्योंकि जब तक इलाहाबाद का 'अखण्ड हिन्दुस्तान' का प्रस्ताव मौजूद है और जब तक महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू की घोषणाएँ हिन्दुस्तान के बँटवारे के विरुद्ध मौजूद हैं तब तक हमें आशा रखनी चाहिए कि कांग्रेस पाकिस्तान को स्वीकार नहीं करेगी। किन्तु अभी मैं इस प्रस्ताव को पास करने में कांग्रेस की भूल समझता हूँ, क्योंकि इसी के आधार पर आज पंजाब में 'स्वतन्त्र पञ्जाब' की माँग करने वाले कुछ सिक्ख और कुछ दूसरे भाई इसका यह आशय समझ बैठे हैं कि कांग्रेस ने मुसलमानों की पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली है। और इसीलिए वह पञ्जाब के बँटवारे पर ज़ोर देते हैं। जैसा कि मैंने अभी कहा कि यद्यपि मैं कांग्रेस के इस प्रस्ताव को अधिक

महत्त्व नहीं देता, तथापि इस में मुझे मि० राजगोपालाचार्य का यह ख़याल काम करता दिखाई देता है, जो उन्होंने अपने एक वक्तव्य में बताया है, "अब हिन्दुस्तान को अवश्य ही 'अल्स्टर' की अवस्थाओं का सामना करना पड़ेगा।"

इस में कोई सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तान की आजकल की राजनीतिक अवस्था में दो ही मार्ग सम्भव हैं। एक तो यह कि वह आयर्लैण्ड बनना स्वीकार करे जिस के सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक सदस्य ने भविष्यवाणी की थी—जिसका ज़िक्र मैं पिछले अध्याय में कर आया हूँ। दूसरा यह कि वह अब्राहम लिंकन की राष्ट्रीयता को अपनाकर अमेरिका की तरह विभाजन को गृह-युद्ध से अधिक सुविधा-जनक समझे। हिन्दुस्तान इन दो रास्तों में किस पर चलना पसन्द करेगा इस के सम्बन्ध में अभी कोई भविष्य-वाणी न करते हुए मैं केवल यह बतला देना चाहता हूँ कि जो लोग यह समझते हैं कि आयरलैंड का रास्ता स्वीकार करने अथवा पाकिस्तान को मान लेने के सिवा कोई चारा नहीं, वह अपनी पराजित मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। प्रथम तो मेरा यह विचार है कि मुस्लिम लीग को छोड़कर शेष सारा हिन्दुस्तान पाकिस्तान के विरुद्ध संगठित हो जाय तो न केवल पाकिस्तान ही समाप्त हो जायगा बल्कि गृह-युद्ध की भी आशंका न रहेगी। फिर भी उस की नौबत आवे ही तो हमें उस से भयभीत न होना चाहिए। जो बात अमरीका को एक बना सकती है वह अवश्य ही हिन्दुस्तान को भी एक ही बनाएगी। हमें विभाजन की अपेक्षा गृह-युद्ध को इसलिए भी अच्छा समझना चाहिए कि वह भारत के विभाजन का कोई स्थायी सुलझाव नहीं बल्कि एक तरह से उस से बचने का तात्का-

लिक उपाय भर है। इस के अतिरिक्त इस बात की भी कोई गारंटी नहीं कि यह विभाजन हमें स । के लिए गृह-युद्ध से छुटकारा दिला देगा, क्योंकि विभाजन के अमल में आते ही गृह-युद्ध के बीज स्वयं ही उगने लगेंगे। इसलिए मैं यह कहता हूँ कि हिन्दुस्तान को इस समय राजगोपालाचार्य नहीं बल्कि अब्राहम लिंकन चाहिए, जो पृथकता-प्रिय लोगों को स्पष्ट कह दे—"मैं शान्ति की प्राप्ति के लिये प्रत्येक उचित सीमा तक जाने को तैयार हूँ, परन्तु एक बात जिसे मैं किसी अवस्था में स्वीकार नहीं कर सकता—वह है संगठनको तोड़ने की। मैं पराजित मनोवृत्ति वालों से कुछ न कहता हुआ यहां स्व० सी० एफ० एंड्रूज़ के शब्द उद्धृत करता हूँ—जो उन्होंने हिन्दू संस्कृति के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक (True India) 'सच्चा हिन्दुस्तान' में लिखे हैं—"हिन्दू चरित्र की यह सब से बड़ी दुर्बलता है कि बुराई का निर्भयता से विरोध करने के स्थान पर वह उस के आगे झुक जाते हैं। शायद सदियों की दासता के कारण यह उनके चरित्र का अंश बन चुका है।"

मैं चाहता हूँ कि ये भाई इन शब्दों पर भली भाँति विचार करते हुए अपने लिए ठीक रास्ता अपनाएँ। हिन्दुस्तान को यदि किसी बात की आवश्यकता है तो वह उग्र राष्ट्रीयता की है। इसी के द्वारा हमें मुक्ति मिलेगी। इसी को छोड़कर हम भटक रहे हैं। इसी को अपना कर हम लक्ष्य पर पहुँच सकेंगे। अब भी समय है कि हम अपनी उस भूल को सुधार लें जो हिन्दुस्तान में राष्ट्रीयता के नाश और साम्प्रदायिकता की वृद्धि का कारण बनी है।

तीसरा अध्याय

पाकिस्तान

मज़हब और राजनीति

All our troubles come from the misuse of religion in the state. It is a weak man who needs religion to bolster up his rule. Religion is a personal matter, and each citizen of the republic may decide his religion himself. However the State must be secularised." Says Mustfa Kamal, the maker of modern Turkey.

हमारे दुर्भाग्य की भी क्या कोई सीमा है ? इस समय, जब कि दुनिया के दूसरे देश राष्ट्रीयता को भी संकुचित समझते हुए अन्तर्राष्ट्रीयता के द्वारा मनुष्यता की ओर अग्रसर होने की बातें सोच रहे हैं, हम लोग राष्ट्रीयता को छोड़कर उस वस्तु की प्राप्ति में प्रयत्नशील हैं जिसे शेष संसार ने उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति तक सर्वथा त्याग दिया था।

जो लोग इतिहास से परिचित हैं वे जानते हैं कि आज से ढाई हज़ार वर्ष पहले यूनान कुछ भौगोलिक अवस्थाओं के कारण छोटे छोटे अनेक राज्यों में बँटा हुआ था लेकिन जब चौथी शताब्दी ई० पूर्व में उस पर ईरान के हमले शुरू हुए तो उसे अपनी केन्द्रीय शक्ति संगठित करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसलिए जिस प्रकार भारत के इतिहास में सन् १७८० में अंगरेज़ों के मुक़ाबले के लिए निज़ाम, हैदर अली और मरहठों में गठबन्धन हुआ और १८५७ के अतिरिक्त अनेक दूसरे अवसरों पर सर्वसाधारण हिंदू और मुसलमान संगठित होते देखे गए इसी प्रकार यूनान के उन राज्यों ने सम्मि-

लित शत्रु से लोहा लेने के लिए आपस में एका कर लिया। किन्तु जिस प्रकार आदर्शों की विभिन्नता के कारण हमारे देश की आज़ादी की लड़ाई की पहिली कोशिशें सफल न हो सकीं उसी तरह यूनान के उन राज्यों में भी एकता स्थायी न हो सकी, और यूनानी विचारकों और यूनान के उन राज्यों में भी एकता स्थायी न हो सकी, और यूनानी विचारकों और दार्शनिकों ने ऐसे उपाय सोचने शुरू कर दिये जिनके द्वारा यूनान एका के पथ पर अग्रसर हो सके। इसका श्रेय अरस्तू और लुकमान को प्राप्त है। इन महर्षियों ने न केवल यूनानियों को नए विचार देकर दलबन्दी के कीचड़ से निकाल कर एक राष्ट्र बना दिया, बल्कि दुनियाँ को भी सम्मिलित शासन का ऐसा पाठ पढ़ाया जिसके अनुसार संगठित होकर आज योरोप सम्पूर्ण संसार पर छाया हुआ है। जापान और अमेरिका इन्हीं उपायों द्वारा सुदृढ़ और समुन्नत राष्ट्र बन गए।

आप इंगलैंड का उदाहरण लीजिए। जब तक उसने पुराने विचारों को नहीं छोड़ा और उसका शासन सांप्रदायिक आधार पर चलता रहा उसमें गृह-युद्ध का दौर दौरा रहा, अनेक बार कैथोलिकों और प्रोटेसटैंटों में खून की नदियां बहीं। किन्तु सोलहवीं शताब्दी में जब उसने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया और राष्ट्रीय शासन की स्थापना की तो इतने थोड़े समय में वह इतनी उन्नति कर गया कि संसार की एक बड़ी साम्राज्य-शक्ति का स्वामी है। साम्राज्य के विस्तार के अतिरिक्त वहाँ के निवासियों ने जो सांसारिक उन्नति की उसका उदाहरण और कहीं नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि उसने पुराने शासन-तन्त्र को जड़मूल से हटाकर वहाँ राष्ट्रीय शासन के सिद्धांतों को प्रधानता दी। इससे भी समीप का एक उदाहरण लीजिए। मिश्र की वफ्द

पार्टी नहास पाशा के नेतृत्व में आगे आई और इण्डियन नेशनल कांग्रेस के आदर्शों के स्थान में उसने "नेशनल स्टेट" के आदर्श और 'नेशनेलिज्म' के सिद्धांत पर दृढ़ता से अपना आन्दोलन चलाया और वह स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो गई। अब वहाँ सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय शासन स्थापित है, वहाँ धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए सांप्रदायिक बहुमत और अल्प मत का झगड़ा उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं रहा। यही हाल आजकल ईरान का है जिसका जन्मदाता रज़ाशाह पहलवी है। तुर्की की उन्नति को देखिए उसने अपनी समस्याओं और अपनी राष्ट्रीय कठिनाइयों को जिस प्रकार सुलझाया है उसके सम्बन्ध में यदि मैं यह कहूँ कि वह हम हिन्दुस्तानियों की कठिनाइयों को हल करने के लिए एक अच्छा उदाहरण है तो अनुचित न होगा। सचमुच जब कभी मुझे तुर्की और उसके मुक्तिकर्त्ता कमाल अता तुर्क की याद आती है तो मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है। कमालपाशा ने न केवल अपने देश की प्रतिकूल परिस्थितियों को सुलझा कर अनुकूल बनाया बल्कि एक ऐसा उदाहरण स्थापित किया जिसके द्वारा दुनिया के दूसरे देश भी लाभ उठा सकते हैं। उसने तुर्की को यह पाठ पढ़ाया कि अपने राष्ट्र की उन्नति करते हुए किसी दूसरे देश को दासता के बन्धन में न बाँधा जाय और इस प्रकार साम्राज्यवादी योरोप के सामने ठीक उसके बग़ल में एक नई निराली शासन-व्यवस्था स्थापित कर उसे चकित कर दिया। तुर्की ने धर्म को राजनीति से बहिष्कृत करके और पुराने रीतिरिवाज़ों की केंचुली उतार कर नई सभ्यता और संस्कृति के रंग में रँग कर हम हिन्दुस्तानियों को राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं को नए ढङ्ग से समझने का पाठ पढ़ाया।

अभी कुछ दिन पहले हिन्दुस्तान का दौरा करने वाला तुर्की का प्रेस मिशन लाहौर आया था। उसके नेता रफीक एफ० आर० अताई ने चाय के एक निमन्त्रण के अवसर पर स्थानीय मुस्लिम पत्रकारों से कहा—"वर्तमान तुर्की की उन्नति का कारण यह है कि उसने धर्म को राजनीति से निकाल बाहर किया है। इतना ही नहीं उन्होंने तो यहां तक कहा था कि वर्तमान तुर्की को पान इस्लामिज़्म (संसार भर में इस्लाम का फैलाव) से कोई दिलचस्पी नहीं। अगर हिन्दुस्तान का कोई मौलवी तुर्की में जाकर राजनीति के साथ धर्म के गठ-बन्धन का उपदेश देगा तो तुर्की इसे कभी सहन न कर सकेगा।"

इसके अतिरिक्त कामाल अतातुर्क के ये शब्द हमारे सामने हैं जो उन्होंने शासन-अधिकार प्राप्त करने के बाद तुर्की की नेशनल असेंबली में अध्यक्ष के आसन से कहे थे "हमारी संपूर्ण कठिनाइयां राजनीति में धर्म के गंठबन्धन के कारण हैं। दुर्बल व्यक्तियों को ही राजनीति में धर्म का सहारा लेने की आवश्यकता होती है। धर्म का संबन्ध मनुष्य की अंतरात्मा से है और तुर्की का प्रत्येक निवासी स्वयं यह निर्णय कर सकता है कि उसे किस धर्म से शान्ति प्राप्त हो सकती है।" तुर्की-कानून के छः सिद्धान्तों में से एक यह भी है, "तुर्की एक विशुद्ध राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक राष्ट्र है। धर्म या मज़हब यहाँ के शासन के कामों से बिल्कुल अलग हैं। सरकारी कानून या शासन-व्यवस्था में सामाजिक या शिक्षा-संबन्धी कामों में मज़हब को दाखिल करने की इजाज़त नहीं है।" तुर्की में धर्म को राजनीति से कितना अलग रखा गया है इस प्रसंग में आप यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि वहाँ की असेम्बली का प्रधान परमात्मा के नाम पर नहीं

बल्कि अपने सम्मान और सदाशयता के नाम पर शपथ ग्रहण करता है। इसी प्रसंग में कमाल अतातुर्क एक स्थान में कहते हैं, "तुर्की कोई इस्लामी स्टेट नहीं बल्कि टर्किश स्टेट है।" वैसे भी उसके शासन-विधान के छः सिद्धांतों में यह भी कहा गया है। "तुर्की प्रजातन्त्र देश है। इस में एक ही श्रेणी के व्यक्ति बसते हैं और वे हैं तुर्क। किसी विश्वास विशेष (धर्म) या सांप्रदायिक भावना के कारण किसी भी व्यक्ति को कोई भी विशेष अधिकार प्राप्त नहीं और न वह उस अधिकार की मांग कर तुर्की-निवासियों के संगठन और समानाधिकार में गड़बड़ कर सकता है। संपूर्ण राष्ट्रीय कार्यों का उद्देश्य सर्वसाधारण जनता की उन्नति करना है। कमालिज़्म का असली मतलब प्रजा-तंत्र है।" और टर्किश मिशन के नेता रफ़ीक अताई के कथना-नुसार, "उस्मानिया सल्तनत ने इस्लाम को स्वीकार करते हुए उसके केवल सुन्नी मत को ही स्वीकार किया था, जिससे लोगों में प्रथकता की भावना उत्पन्न हुई। किन्तु राजनीति से धर्म के बहिष्कार ने तुर्की के संगठन को दृढ़ बना दिया।" और आज हिन्दुस्तान के मेल-मिलाप को कायम रखने के लिए भी यही आव-श्यक है कि राजनीति से धर्म का कोई सम्बन्ध न रखा जाय और यहाँ पूर्ण रीति से प्रजातंत्र की स्थापना की जाय। सचमुच हमारी संम्पूर्ण समस्याओं को सुलझाने का एक मात्र उपाय प्रजातंत्र की स्थापना है, जिसमें सांप्रदायिक बहुमत और अल्पमत का कोई प्रश्न न होगा।

सर्वसाधारण जनता-द्वारा जनता की शासन-व्यवस्था होगी। उसमें हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान और ईसाई सब के अधिकार समान होंगे। और जिस प्रकार योरोपियनों द्वारा

'एशिया का रोगी' कहे जाने वाले तुर्की ने स्वतंत्र और समुन्नत राष्ट्रों की समता प्राप्त करली उसी प्रकार हमारा हिन्दुस्तान भी प्राप्त कर लेगा। इस लिए मैं अपने मुसलमान मित्रों से कहूँगा कि राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र के इस युग में सांप्रदायिक आधार पर देश का विभाजन करने के बदले राष्ट्रीय विचार-धारा को आधार बना कर समानता के दृष्टिकोण से देखना सीखिए, क्योंकि यदि सम्प्रदाय की बुनियाद पर संसार का विभाजन उचित होता तो आज ईसाई और बौद्ध अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक दूसरे के विरुद्ध न लड़ते। उस्मानिया सल्तनत का खात्मा न हो जाता। चीन के पांच करोड़ मुसलमान चीनी राष्ट्र का एक अंग न होते। जब चीनी मुसलमान गैर मुसलमानों के साथ मिल कर एक शासन में रह सकते हैं, तब आप के लिए मिल कर रहने में क्या कठिनाई है? ज़माना बदल रहा है। उसके साथ-साथ आप भी बदलिये। गुलाम के लिए पान इस्लामिक फेडरेशन के स्वप्न देखना बिल्कुल बेमाने और बेबुनियाद है।

दो क़ौमी की थ्योरी

जहाँ तक साम्प्रदायिक आधार पर पाकिस्तान की माँग का सम्बन्ध है इस पर बहस हो चुकी है। किन्तु चूँकि यह मांग अब साम्प्रदायिक नहीं रही बलिक इस के साथ, अब दो क़ौमों की थ्योरी भी पेश की जाती है और यह भी कहा जाता है कि हिन्दुस्तान एक छोटा-सा महाद्वीप है, भूतकाल में कभी एक देश नहीं रहा, इसलिए इन समस्याओं पर विचार करना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सब से पहिले मैं दो क़ौमों की थ्योरी को लेता हूँ।

इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि (१) मजहब के अतिरिक्त हिन्दुओं और मुसलमानों की रहन-सहन, परम्परा, सभ्यता

और उनकी भाषा अलग अलग है, इसलिए यह दो भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। (२) चूँकि मुसलमान एक जाति हैं इसलिये आत्म-निर्णय का अधिकार माँगते हुए अपने लिये अलग 'होमलैंड' चाहते हैं।

आइए हम देखें कि इन बातों में कहाँ तक सचाई है। जहाँ तक हिन्दू और मुसलमानों की परम्परा का सम्बन्ध है मैं समझता हूँ कि इस विषय में मुसलमानों में ही नहीं हिन्दुओं में भी कुछ भ्रम पाया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भूतकाल में हिन्दुओं और मुसलमानों में बहुत रक्त-पात हुआ। किन्तु इस रक्त-पात के दो कारण हैं। एक साम्प्रदायिक और दूसरा जातीय। सब से अधिक भ्रम इसी दूसरे प्रकार के रक्तपात के सम्बन्ध में है। यदि इसे भली भाँति समझ लिया जाय तो हमारी कठिनाइयाँ और पारस्परिक घृणा के भाव बहुत कुछ दूर हो सकते हैं। क्योंकि जहाँ तक साम्प्रदायिक मनोमालिन्य का सम्बन्ध है, राष्ट्रीयता के इस युग में इसका कोई महत्त्व नहीं। इसका सम्बन्ध हमारी वर्तमान अवस्थाओं के साथ उतना ही है जितना कि इङ्गलैंड के इतिहास में रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों की लड़ाइयों का है, अथवा ईसाइयों और मुसलमानों के मध्य फिलस्तीन के पवित्र स्थानों के लिए धार्मिक लड़ाइयों का है, जो कि इतिहास में 'क्रूसेड' के नाम से प्रसिद्ध हैं, और जिनकी तह में वह धार्मिक पागलपन काम करता था। जो उस समय लोगों में अधिक पाया जाता था। किन्तु यदि इङ्गलैंड में नेशनल स्टेट अर्थात राष्ट्रीय शासन की स्थापना के बाद रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट आपस में एक जाति बनकर रह सकते हैं; मिश्र के ईसाई और मुसलमान एक जातीयता की लड़ी में पिरोये जा सकते हैं और उनकी जातीय परम्परा

बाधक नहीं होती, तो कोई कारण नहीं है कि हिन्दू और मुसलमान भी अपनी पुरानी परम्पराओं का पालन करते हुए, एकता के बन्धन में न बँध सकें। प्रश्न केवल धार्मिक जुनून को छोड़ने और सहनशीलता उत्पन्न करने का है और यह उत्पन्न हो सकती है यदि हमारे मुसलमान भाई इसकी आवश्यकता का अनुभव करें। इस विषय में सबसे ज़रूरी बात यह है कि वे इस दृष्टिकोण को भलीभाँति मानें कि भारतवर्ष उनकी जन्म-भूमि है और इस समय वे इसलाम के अनुयायी हैं, तो इसका कारण यह है कि उनके बाप-दादों ने किसी कारण उसे स्वीकार कर लिया था। अन्यथा उनकी जातीयता वही है जो हिन्दुओं की है। और ऐसी अवस्था में दोनों की जातीय परम्पराएँ एक हैं। यह तो हो सकता है कि संपूर्ण संसार के मुसलमानों के धार्मिक कर्म-काण्ड एक हों, बौद्धों और हिन्दुओं के भी एक हों। किन्तु जहाँ तक राष्ट्रीयता का सम्बन्ध है यह कहना, कि चीन के मुसलमानों और ग़ैरमुसलमानों, मिश्र के मुसलमानों और ईसाइयों तथा हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों की जातीय परम्पराएँ भिन्न भिन्न हैं, असत्य और निराधार है। हिन्दुस्तान के उन मुसलमानों की परम्पराएँ तो हिन्दुओं से भिन्न हो सकती हैं जो अरब से आकर यहाँ आबाद हुए हैं, किन्तु उनकी नहीं जो हिन्दू से मुसलमान हुए हैं। और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों की बहुसंख्या ऐसी है जो हिन्दुओं से मुसलमान बने हैं। इसलिए उनकी परम्पराएँ हिन्दुओं से संबन्धित होनी ही चाहिए, न कि उन विदेशी मुसलमानों से जिन्होंने हिन्दुस्तान को ग़ुलाम बनाने के लिए इस पर हमले किए। यदि आप ध्यान से सोचें तो आपको विदित होगा कि जब हिन्दुस्तान पर विदेशी आक्रमण आरम्भ हुए, जिन्हें इतिहास में इस्लामी आक्रमण कहा जाता है और

जब उनके परिणाम-स्वरूप मुग़ल-साम्राज्य स्थापित हुआ तो उस समय हिन्दुओं और मुसलमानों की स्थिति वही थी जो इस समय राष्ट्रीय सङ्गठन में बँधे हुए हिन्दुस्तानियों की है। अर्थात् जिस प्रकार अब अङ्गरेज़ शासक हैं और हिंदू-मुसलमान शासित उसी प्रकार उस समय विदेशी मुसलमान शासक थे और देशवासी हिन्दू मुसल मान शासित। इसलिए यदि हिन्दुओं ने उन मुसलमानों के विरुद्ध शस्त्र उठाए तो उनका उद्देश्य हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के साथ सम्बद्ध था; ठीक इसी तरह जिस तरह आज हम अंगरेज़ों के विरुद्ध लड़ रहे हैं। इसलिए हिन्दू राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, और गुरु गोविन्द सिंह को अपना नायक मानते हैं तो यह केवल इसलिए नहीं कि उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा की वरन् इसलिए भी कि उन्होंने उस समय की अवस्थाओं के अनुसार हिन्दुस्तान को परवशता की बेड़ियों से मुक्त करने का यत्न किया; और इसी प्रयत्न में अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। किन्तु मुसलमान इसके विरुद्ध औरङ्गज़ेब और अकबर को केवल इस कारण अपना नायक मानते हैं कि संयोग से वे मुसलमान थे, यद्यपि जातीयता के आधार पर वे विदेशी और मुग़ल थे और ये हिन्दू या अधिक से अधिक हिन्दुस्तानी थे।

यह बात तो समझ में आ सकती है कि उस समय के हिन्दुस्तानी मुसलमानों ने केवल सांप्रदायिक भावना से अपने सहधर्मी विदेशियों को हिन्दुस्तान में शासन स्थापित करने में सहायता दी क्योंकि उस समय राष्ट्रीय भावनाओं का इतना विकास नहीं हुआ था और संप्रदाय अथवा धर्म समाज में बहुत ऊँचा स्थान रखता था; किन्तु आज कल के राष्ट्रीयता के युग में हिन्दुस्तानी मुसलमानों की दूसरे देशों के मुसलमानों के साथ सहानुभूति की भावना यह सिद्ध करती है कि इतिहास की सच्चाई को वे समझ नहीं

पाते और या फिर समझने का प्रयत्न नहीं करते। यदि वे इस सचाई को समझलें तो उन्हें यह स्वीकार करने में कठिनाई न होगी कि हिन्दुस्तान उनका वतन और होमलैंड है।

हिन्दुस्तान के ईसाइयों का उदाहरण हमारे सामने है। ईसाई होते हुए भी उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि साम्राज्यवादी अंग्रेज़, जिन्होंने हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी शासन स्थापित किया और उन्हें ईसाइयत का प्रचार करने के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ दीं, उनके क़ौमी हीरो हैं, अथवा ईसाई होने के बाद उनका वतन बदल गया है। इसके विरुद्ध हमेशा उन्होंने अपने आप को हिन्दुस्तानी कहा है और अंगरेज़ी शासन के विरुद्ध हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता-संग्राम से न केवल सहानुभूति प्रगट की है, वरन् उसमें हिस्सा भी लिया है। किन्तु इन सब बातों के अतिरिक्त क्या यह ठीक नहीं कि हिन्दुस्तान को वर्तमान अवनत अवस्था से निकलने के लिए एक बहुत बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता है, जिसे लाने के लिए हमें बीते युग की उन संपूर्ण परम्पराओं को त्यागना होगा जो राष्ट्रीय हित के साधन की राह में रोड़े बन रही हैं। निःसंदेह इतिहास का अध्ययन अति आवश्यक है किन्तु उसका निर्माण उससे कम आवश्यक नहीं है। इसलिए हिन्दुस्तानी मुसलमानों को चाहिए कि वह हिन्दुओं से मिलकर हिन्दुस्तान के इतिहास में एक नवीन अध्याय का आरम्भ करते हुए नई परंपराएँ स्थापित करें। हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय शासन और प्रजातंत्रीय विधान के क़ानून में पुरानी परम्पराओं का कोई प्रश्न ही नहीं होगा।

अब रहा सभ्यता और भाषा का प्रश्न। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रहे कि धर्म-परिवर्तन के साथ यह आवश्यक नहीं कि सभ्यता भी बदल जाए। किसी देश की सभ्यता का संबंध उस देश

की विशेष भौगोलिक अवस्थाओं, जलवायु और रहन-सहन से होता है। इसलिए हिन्दुस्तानी मुसलमानों को, जो हिन्दुओं से मुसलमान बने, सभ्यता वही होनी चाहिए जो हिन्दुओं की है। और यदि मुसलमानों ने अरबी सभ्यता अपना ली है तो यह उनकी भूल है और उन्हें इस विषय में तुर्की से सबक सीखना चाहिए। जिसने "Turkeyfication" की पालिसी पर चलते हुए तुर्की की हर बात को इस्लामी रङ्ग से निकाल कर टर्किश साँचे में ढाल दिया है।

यही बात भाषा के संबन्ध में भी कही जा सकती है। उर्दू हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण मुसलमानों की सम्मिलित अथवा मातृ भाषा नहीं है। यह और बात है कि बंगाल, सिन्ध, मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिणी हिन्द के कुछ मुसलमानों ने भी सांप्रदायिक भावना के आधार पर जन-गणना के समय अपनी मातृ-भाषा उर्दू लिखवा दी हो, जिसे शायद उनकी माताएँ जानती ही नहीं होंगी। यथार्थ बात तो यह है कि उनकी मातृ-भाषा क्रमशः बंगाली, सिन्धी, गुजराती, मराठी अथवा कनाड़ी आदि है। उत्तरी भारत के मुसलमानों को छोड़ कर जिनकी संख्या तीन करोड़ से भी कम है, शेष सम्पूर्ण हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वह हिन्दी लिख-पढ़ या बोल और समझ सकते हैं। किन्तु जहाँ तक उर्दू का सम्बन्ध है उत्तरी हिन्द के अतिरिक्त शेष हिन्दुस्तान में बहुत कम ऐसे लोग होंगे जो उर्दू का पढ़ना-लिखना तो दूर रहा उसे भली भाँति समझ भी सकते हों और फिर कौन नहीं जानता कि मुस्लिम लीग के 'क़ायदे आज़म' मि० जिन्ना स्वयं भी उससे अपरिचित हैं। अस्तु: यह सिद्ध हुआ कि मुस्लिम लीग का यह

दावा कि मुसलमानों की सभ्यता, उनकी भाषा और उनकी धार्मिक परम्पराएँ हिन्दुओं से भिन्न होने के कारण, वे उनसे अलग जाति हैं बिल्कुल ग़लत है। और यह भी कि भाषा और सभ्यता आदि के आधार पर हिन्दुस्तान के सारे मुसलमान एक हैं बिल्कुल ग़लत है। वे न केवल जाति वरन् ऐसे धार्मिक बहुमत में भी नहीं, जैसा कैनेडा और रूस आदि में पाया जाता है, क्योंकि उनकी सभ्यता, भाषा और परम्परा आदि वहाँ की महान जातीयता से भिन्न हैं और यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी मुसलमानों में कोई वैसी बात नहीं।

वैसे भी मुसलमान अपने आप में कोई एक जाति नहीं हैं। दुनिया में इस्लाम के जितने अनुयायी हैं सब मुसलमान कहलाते हैं। जिस तरह ईसाइयत के अनुयायी ईसाई कहलाते हैं। किन्तु जातीयता के आधार पर वह एक नहीं अनेक हैं। इस्लाम एक महान् धर्म है और कोई भी व्यक्ति अपनी जातीयता बदले बिना उसे स्वीकार कर सकता है, जिस प्रकार तुर्की, मिश्र, ईरान, और अफ़ग़ानिस्तान आदि इस्लामी देशों में रहनेवाले मुसलमानों की जातीयता क्रमशः तुर्क, मिश्री ईरानी और अफ़ग़ान है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान के मुसलमानों की जातीयता समुचित शब्दों में हिन्दू और आज कल के अर्थों में हिन्दुस्तानी है। यदि चीनी मुसलमानों की जातीयता चीनी हो सकती है, जैसा कि पाँच करोड़ की संख्या होते हुए भी उन्होंने अपने आप को कभी अलग एक जाति नहीं बतलाया, इसी तरह हिन्दुस्तानी मुसलमानों की भी कोई एक जाति नहीं हो सकती और न वह इसका दावा कर सकते हैं। इस प्रसंग में एक मज़े की बात यह है कि मि० जिन्ना स्वयं आज से चार साल पहले मुसलमानों को कम्युनिटी (फिरक़ा) कहा करते थे। इतना ही नहीं उस समय उनकी मुस्लिम लीग का उद्देश्य भी संयुक्त

हिन्दुस्तान की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इसका प्रमाण हमें मुस्लिम लीग के अक्तूबर १९३७ के लखनऊ अधिवेशन में मिलता है। उस समय मि० जिन्ना ने अपने अध्यक्ष पद से कहा था—

"In order to strengthen the solidarity of the Muslim Community and to secure for the Muslims there proper and effective share in the Provincial Government, it is essential that the Muslims should organise themselves as one Party, with an advanced and progressive programme." फिर आगे चल कर कहते हैं—

"Since last April 1936 the Musalmans of India have rallied round the League more & more, and I feel confident that once they understand & realise the policy & programme of the Muslim League, the entire muslim population of India would rally round its platform & under its flag. The Muslim League stands for full Natural Democratic self Government."

मि० जिन्ना के इन शब्दों से स्पष्ट है कि सन् १९३७ के अन्त तक उन्हें 'दो जातियों की थ्योरी' का ज्ञान न हुआ था। और न यह विचार आया था कि प्रजातन्त्र-प्रणाली भारतके लिये अनुकूल नहीं। वरन् उस समय तक मुसलमान एक 'फ़िरक़ा' मात्र थे। और मि० जिन्ना के कथनानुसार उस समय मुस्लिम लीग का लक्ष्य "प्रांतीय शासन में मुसलमानों को प्रभावशाली भाग लेने के लिये मुस्लिम लीग के प्लेटफ़ार्म पर जमा हो कर हिन्दुस्तान के लिये पूर्ण रूप से प्रजातन्त्र पर आधारित "राष्ट्रीय स्वायत्त शासन" प्राप्त करना

था। अब इसका यही अर्थ हुआ न कि इन चार वर्षों में ही मुसलमान अचानक एक 'कम्यूनिटी' से बदल कर एक 'क़ौम' बन गये ? किन्तु परिस्थितियों का अध्ययन करने से ऐसा मालूम होता है कि जब पिछले चुनावों में मुस्लिम लीग को पूरी पूरी सफलता न मिली तो मि० जिन्ना और उस के साथियों ने यह अनुभव किया कि केवल नौकरियों का लालच आम मुसलिम जनता को आकर्षित नहीं करता, इसलिए उन्होंने मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावनाओं को उभाड़ने का कार्य-क्रम तैयार किया, ताकि कांग्रेस के आर्थिक कार्य-क्रम को मुसलमानों में प्रचलित होने से रोकते हुए मुसलिम लीग को मज़बूत किया जा सके। और इसीलिए उन्होंने दो कौमों के सिद्धान्त को जन्म दिया। दुर्भाग्य से इन्हीं दिनों यूरोप में चेकोस्लेवेकिया का मामला पेश था। नाज़ी वहाँ जर्मन अल्पमतों पर अत्याचार होने का प्रोपोगेंडा कर रहे थे; इसलिए हिन्दुस्तान के लीगी लीडरों ने भी नाज़ियों की नकल करते हुए कांग्रेस मन्त्री-मण्डलों के विरुद्ध मुस्लिम अल्पमतों पर अत्याचार करने का प्रोपेगेंडा किया। इस पर सप्रू कमेटी बनाई गई। इसीलिए कांग्रेस मन्त्री-मण्डलों के त्याग-पत्र देने पर 'योमेनिजात' (मुक्ति-दिवस) मनाया गया। सचाई यह है कि मि० जिन्ना की सारी वर्तमान राजनीति हिटलर की नकल ही है। और इस में यदि उन्हें सफलता प्राप्त हुई तो उस का कारण यह है कि जहाँ पञ्जाब के भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री स्व० सर सिकन्दर हयात खाँ और बङ्गाल के प्रधान मन्त्री मि० फ़जलुलहक़ को किन्हीं खास परिस्थितियों के कारण मुस्लिम लीग की शरण लेनी पड़ी, वहाँ कांग्रेसी प्रान्तों के वे मुसलमान लीडर भी शामिल हो गए जिन्हें कांग्रेस ने अपने मन्त्री-मण्डल में नहीं लिया था।

अस्तु, दो जातियों के सिद्धांत की वास्तविकता यही है, और इसे उपस्थित करते हुए मुस्लिम लीगियों का उद्देश्य किसी प्रकार से भी मुसलमानों के साम्प्रदायिक, राजनीतिक और यहाँ तक कि जातीय अल्पमत के लिए भी क्रमपूर्वक सांस्कृतिक संरक्षण, राजनीतिक विशेषाधिकार अथवा संयुक्त भारत के किसी प्रांत विशेष में ऐसी स्वाधीनता प्राप्त करने का नहीं है जैसी कि केनेडा और रूसके जातीय अल्पमतोंको प्राप्त है; यदि ऐसा होता तो उन्हें प्रसन्न करने के लिए कांग्रेस जिस सीमा तक जाचुकी वह पर्याप्त होता। लेकिन उन का असली मतलब हिन्दुस्तान की एकता को तोड़ना, उसकी राष्ट्रीयता को तबाह करना, और स्वतन्त्रता की लड़ाई की राह में रोड़े अटकाना और अन्त में साम्प्रदायिक अल्पमत के नाम पर हिन्दुस्तान में आतंक फैला कर हिन्दुओं और हिन्दुस्तान को दूसरे लोगों का गुलाम बनाना है। इसीलिए वह किसी भी तरह राज़ी होने का नाम नहीं लेते, विशेषतः ऐसी स्थिति में जब कि कांग्रेस उन्हें केन्द्र में उनकी इच्छानुसार राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने का निमन्त्रण दे कर एक और कोरा चेक पेश कर चुकी है। अतएव इस स्थिति में उन को सुमार्ग पर लाने का वह तरीका नहीं जो मि० राजगोपालाचार्य हमारे सामने उपस्थित करते हैं बल्कि वह है जो अब्राहम लिंकन ने रखा था। आखिर संसार में आदर्श भी कोई चीज़ है। हथियार डाल कर शांति स्थापित करना पवित्र और उच्च आदर्श होता तो आज संसार में यह रक्त-पात न देखा जाता।

अब रहा आत्म-निर्णय के अधिकार का प्रश्न। इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिये कि आत्म-निर्णय का अधिकार किसी देश अथवा जाति को प्राप्त होता है। सम्प्रदाय या जाति के

विभिन्न भागों को नहीं। अतः यदि यह अधिकार प्राप्त हो सकता है तो सामूहिक रूप में भारत को, न कि किसी सम्प्रदाय को। मुस्लिम एक सम्प्रदाय है राष्ट्र नहीं। भारत में एक और केवल एक राष्ट्र है। भारतीय मुस्लिम केवल उस का भाग बन कर ही उन्नति कर सकते हैं और इस प्रकार दूसरों को आगे बढ़ने में सहायता दे सकते हैं।

क्या भारत एक महाद्वीप है ?

क्या भारत एक महा द्वीप है ? इस का उत्तर स्पष्ट है 'नहीं'। क्या भारत भूतकाल में एक रहा है ? इसके उत्तर में अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति ने उसे एक बनाया है। भूत में वह एक रहा है। अब भी एक है और भविष्य में भी निश्चय ही एक रहेगा। महाद्वीप वह है जिस में विभिन्न नसलों की विविध जातियां आबाद हों। उस में कई भाषायें बोली जाती हों। उस की जनता का रहन-सहन विभिन्न हो। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है—भारत में इन तीनों बातों में से एक भी विद्यमान नहीं। परन्तु शोक है कि आज से कुछ वर्ष पहिले जिस स्वरूप में ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत को संसार के सामने रखते थे और अब भी रखते हैं हमारे मुस्लिम लीगी मित्र आज उसी का समर्थन कर रहे हैं।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी कहते हैं कि भारत में राष्ट्रीयता नाम की कोई वस्तु नहीं क्योंकि इसमें कोई सुसंगठन नहीं। भारत एक छोटा महा द्वीप है और उस के लोग विविध नसलों तथा जातियों से सम्बन्ध रखने वाले भानमती के कुटुम्ब की भाँति हैं जिन्हें ब्रिटिश संगीनों ने एक दूसरे से मिला रखा है। इन के हटने की देर है कि भारतीयों में अव्यवस्था फैल जायगी। ऐसे ही विचारों के

आधार पर एक बार ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्ज ने अपने एक प्रसिद्ध भाषण में भारत नौकरशाही को Steel frame का नाम देते हुए कहा था कि इसे भारत से कभी भी हटाया नहीं जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से भारत का सारा प्रबन्ध छिन्न-भिन्न हो जायगा। लगभग यही विचार ब्रिटेन के सूचना विभाग की दो पुस्तकों 'Speaking points on India' और 'Fifty facts' में प्रकट किये गये हैं जिन्हें भारत की स्वतन्त्रता की माँग के सम्बन्ध में ब्रिटेन के व्यवहार के स्पष्टीकरण के लिये अमेरिका में प्रोपेगैण्डा के रूप में बाँटा जा रहा है। इस समय भी मेरे सामने एक 'हिन्दुस्तान' नाम का आक्सफोर्ड-पेम्फ्लेट पड़ा है जिसके लेखक एल० एफ० रशब्रुक विलियम हैं। इस में वह लिखते हैं:—

"दूसरा तर्क जो भारत में ब्रिटिश सेनाओं को रखने के पक्ष में पेश किया जा सकता है वह विविध जातियों का पारस्परिक विरोध का विद्यमान होना है, हिन्दुओं तथा मुस्लिमों में विरोध तो सार्वजनिक रूप में पाया जाता है। यद्यपि हिन्दुओं में विविध सम्प्रदायों में पारस्परिक विरोध नहीं पाया जाता, परन्तु मुसलमानों के विविध सम्प्रदायों में भी खूनखराबा देखा जाता है।.........
इसलिए भारत की आंतरिक शान्ति का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि किसी सशस्त्र जाति के भय से किसी देश की सीमाओं को सुरक्षित करने का।"

यही सज्जन, जो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में इतिहास के प्रोफेसर रह चुके हैं, एक और स्थान पर लिखते हैं:—

"भारत के लोग उसकी नसलें और उसकी भाषायें इतनी विभिन्न हैं कि कुछ समालोचकों के अनुसार भारत केवल एक भौगोलिक नाम है। उस में बङ्गाली, राजपूत, पञ्जाबी, गुजराती,

मरहठी, सिक्ख, पारसी, मुसलमान और ईसाई आदि कई विभिन्न जातियों के लोग आबाद हैं परन्तु हिन्दुस्तानी कोई नहीं। यथार्थ में हिंदुस्तान नाम की कोई वस्तु यहाँ विद्यमान ही नहीं।" और यही बात आज हमारे मुस्लिम लीगी भाई कह रहे हैं। सत्य तो यह है कि—यदि वे ब्रिटिश अनुदार हैं तो ये मुस्लिम अनुदार।

जिस की आँखों पर साम्प्रदायिकता की पट्टी नहीं बँधी वह भारत की एकता से जो इस के कण-कण से प्रकट है इनकार नहीं कर सकता। तदनुसार अमेरिका के पत्र 'न्यू हरेल्ड ट्रिब्यून" की सामरिक सम्वाददाता मिस सोनिया तमारा (जो जन्म से रूसी हैं और जिन्होंने फ्रांस के विविध पत्रों में कार्य्य करने के अतिरिक्त संसार के बहुत से देशों का भ्रमण किया है) जो क्रिप्स मिशन के पश्चात भारत आईं, कलकत्ता के पत्र "अमृत बाज़ार पत्रिका" में अपने एक विशेष लेख में लिखती हैं:—

"शैशव काल में मैं भारत को एक विचित्र देश अनुमान करती थी, क्योंकि उस के सम्बन्ध में मैंने एक फ्रांसीसी की "चमत्कार पूर्ण देश" नामी पुस्तक पढ़ी थी।......मुझे एक ब्रिटिश अधिकारी ने बताया कि भारतीय आपस में बँटे हुए हैं और हिन्दुओं और मुस्लिमों में बड़ा विरोध पाया जाता है। इस बात से मुझे क्लेश हुआ क्योंकि मैं सर्वदा भारत की स्वतन्त्रता का समर्थन करती चली आई हूँ और मैं भारतीय जीवन के विविध रूपों से नितान्त अनभिज्ञ थी।" आगे चल कर आप लिखती हैं:—"जब मैं दिल्ली में ठहरी हुई थी मेरे मन में विविध प्रकार की धारणाएँ उत्पन्न हुईं। तदनुसार मैंने भारत के सम्बन्ध में अधिक अभिज्ञता प्राप्त करने के लिये इस की यात्रा करने का निर्णय किया। मैं दक्षिण में गई और मैसूर और मद्रास प्रेसीडेंसी का दौरा किया। वहाँ से मिल के मज़दूरों की हड़ताल के दिनों में मैं अहमदाबाद गई

जहाँ महात्मा गांधी का बड़ा प्रबल प्रभाव है । जब मिदनापुर, कौंटाई (बङ्गाल) में तूफ़ान आया तो वहाँ गई । मैंने आसाम के देहात तथा भारत के दूरवर्त्ती प्रदेशों में स्थित उस के प्राचीन मन्दिर देखे । मैंने बम्बई और कलकत्ता को भी देखा और इस सारी यात्रा से मैं यह महान तथा निश्चयात्मक भाव लेकर लौटी की विभिन्नता के बावजूद भारत एक देश है । यह बहुत अंश तक रूस से मिलता जुलता है । इसी की भाँति रूस में पर्वत तथा समतल मैदान हैं । वहाँ के लोग विविध भाषायें भी बोलते हैं तो भी देश के जीवन का आवश्यक तथा अटूट अङ्ग हैं ।"

भारत के विविध प्रदेश परस्पर जंजीर की कड़ियों की भाँति उस प्रकार मिले हुए हैं कि प्रकृति को भी उन की पृथकता स्वीकार नहीं । आप को यह तथ्य पाठशालाओं में पढ़ाई जाने वाली सस्ती एटलस से भी विदित होगा । आप एशिया या विश्व का मान-चित्र भी उठा कर देखें तो आपको स्पष्ट रूप में ज्ञात होगा कि हमारा भारतवर्ष समस्त एशिया महाद्वीप में नितान्त पृथक एक सिंह की भाँति उपस्थित है । उत्तर, उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व में हिमालय के उन्नत शिखर और घने और दुर्गम वनों ने इसे अपने संरक्षण में ले रखा है । पश्चिम तथा पूर्व में हिन्द महा सागर ने इसे अपनी गोद में लिया हुआ है । और सब से अधिक मनोरञ्जक विषय यह है कि जहाँ इस के चारों ओर वन तथा समुद्र हैं वहाँ इस के आँतरिक प्रदेश में न कोई दुर्गम पर्वत है, न कोई घना वन और न कोई समुद्र विविध प्रान्तों को एक दूसरे से पृथक करता है । यही नहीं वरन यदि आप भारत का 'फ़िज़ीकल' मानचित्र अपने सामने रखें और उस पर सामान्य दृष्टि डालें तो निश्चय ही आप के लिये यह कहना कठिन होगा कि बंगाल की खाड़ी से लेकर उत्तर-पश्चिमी दर्रों तक की समुद्र तल से ऊँचाई

में कोई विभिन्नता है। आप को इस समस्त प्रदेश में हरे-भरे, सस्य श्यामल खेत लगभग समतल भूमि पर ही दीख पड़ेंगे। वैसे भी यद्यपि कलकत्ता लाहौर से १२०० मील के अन्तर पर स्थित है तथापि जहाँ तक समुद्र-तल से ऊँचाई का सम्बन्ध है उन में केवल ६०० फुट का अन्तर है। अर्थात् आप को एक मील की यात्रा करने के पश्चात् कठिनता से १ इञ्च की ऊँचाई पर ही आना पड़ता है। शायद इसी विचार से हाल ही में एक चीनी सैनिक अधिकारी ने भारत का दौरा करते हुए कहा था, "हिन्दुस्तान की फ़िज़ीकल अवस्था ऐसी है कि कोई टैंक कलकत्ता से लाहौर तक रोलर की भाँति आ सकता है।

सचमुच प्रकृति ने भारत को एक देश बनाया है। यह इस समय भी एक है और निश्चय ही भविष्य में भी एक ही रहेगा। परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि भूतकाल में भी एक था। अब तो फिर भी विज्ञान की उन्नति के कारण फ़िज़ीकल बाधाओं को विजित कर लिया गया है। और यातायात के साधनों में वृद्धि होने के कारण इस के विविध प्रदेशों के लोगों के मध्य सुगम सम्बन्ध स्थापित हो गया है। परन्तु जब यह सब सुविधायें प्राप्त न थीं तो उस समय में जो यात्री, विद्यार्थी, प्रचारक, विजयी और जीवन के युद्ध में व्यस्त लोग भारत के एक प्रदेश से दूसरे में अबाधित रूप में आ जा सकते थे। इस में कोई सन्देह नहीं कि संसार के विविध देशों अथवा हमारे अपने देश में इस समय जो राजनीतिक एकता दीख पड़ती है और जिसकी प्राप्ति के लिये हम हिंदुस्तानी प्रयत्नशील हैं वह भूतकाल में विद्यमान थी। परन्तु उसके साथही यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि चीन को छोड़कर संसार का कोई ऐसा बड़ा देश नहीं जिसमें प्राचीन-काल में वह एकता विद्यमान रही हो जो हिंदुस्तान में पाई जाती थी।

आधुनिक राजनीतिक एकता का प्रादुर्भाव आधुनिक काल की राष्ट्रीयता से हुआ है। इसे आधुनिक यातायात के तीव्रतम साधनों ने सुगम बना दिया है और इसके कारण ही इसे इतनी मज़बूती मिली है। वर्तमान राष्ट्रीयता अथवा जातीयता ने ही यूनान को छोटे-छोटे अनेक राज्यों के कारण भौगोलिक और सांप्रदायिक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी एक राष्ट्र बना दिया। इसी ने फेडेरल इङ्गलैंड, फ्रांस और जर्मनी को वर्तमान रूप दिया। सन् १७६० के जापान को जो विभिन्न सामन्ती शासनों में बँटा हुआ था एक केन्द्र में मिला दिया और संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सहस्रों मील में फैले हुए अनेक भाषाओं और जातियों वाले रूस को एक देश बना दिया। और सब से अन्त में वर्तमान चीन को लीजिए जिसकी अवस्था अभी थोड़े ही पहले तक स्वतन्त्र होते हुए भी 'वसाल स्टेट' (आश्रित राज्य) से अधिक अच्छी न थी मार्शल चियांगकाई शेक का प्रजातन्त्र बना दिया और अब हिन्दुस्तान जो इस प्रकार का परिवर्तन प्राप्त न कर सका सो इस कारण कि उस के निवासियों में राष्ट्रीयता का विचार बहुत देर बाद उत्पन्न हुआ। और अब जब उत्पन्न हो गया है तब वह अवश्य ही अपने अनुकूल स्थान प्राप्त कर के ही रहेगा।

किन्तु, क्या सचमुच हिन्दुस्तान में विभिन्न भाषाओं, सम्प्रदायों, और नस्लों के लोग पाए जाते हैं और क्या सचमुच यह देश इतना विस्तृत है कि इसे महाद्वीप कहा जा सकता है? जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, हम पहले ही लिख चुके हैं कि इसमें केवल एक जातीय लोग आबाद हैं। विभिन्न सम्प्रदायों के होते हुए भी उन की नस्ल और भाषा एक है। इन में कोई अन्तर नहीं, बल्कि आधार भूत एकता में बँधे होने के कारण वह एक ही हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि यह मान भी लिया जाय कि हिन्दु-

स्तान की आबादी 'होमोजीनस' नहीं या उस में विभिन्न विचारों वाले लोग पाए जाते हैं तो इस अवस्था में भी इस का विभाजन उचित और हितकर नहीं। क्योंकि यदि रूस और अमेरिका जैसे महादेश जिन की जन-संख्या और जातीय जीवन हिन्दुस्तान की अपेक्षा अधिक विभिन्न और अनैक्य पर आधारित है एक हो सकते हैं, तो वह कौन सा कारण है जो हिंदुस्तान के एक होने में बाधक है? संयुक्तराज्य अमेरिका की जनसंख्या १२ करोड़ के लगभग है। इसमें से ५० प्रतिशत अमेरिकन अंग्रेज़ी नस्ल से सम्बन्ध रखते हैं और १२ प्रतिशत जर्मन नस्ल से। शेष में से ७ प्रतिशत कैथोलिक आयरिश, ५ प्रतिशत इटालियन, ९ प्रतिशत नीग्रो हैं और बाकी अमेरिकन इण्डियन, चीनी, जापानी, फ़िलीपाइनी आदि हैं और प्रेज़ीडेण्ट रूज़वेल्ट का रक्त जहाँ अंग्रेज़ी है वहाँ मि० वेंडल विल्की का जर्मन। लेकिन इतना होते हुए भी वे जर्मनी से युद्ध कर रहे हैं। अतएव यदि इतने विभिन्न विचारों के होते हुए भी अमेरिकन एक देशीय हो सकते हैं तो निश्चय ही हिन्दुस्तानियों को भी एक देशीय मानना पड़ेगा। किन्तु क्या हिन्दुस्तान पाकिस्तानी अमेरिकन पाकिस्तानियों की तरह उस की एकता स्थिर रखने के लिए गृह-युद्ध के कर्त्ता बनेंगे? और क्या स्विट्ज़रलैंड और अमेरिका का इतिहास हिन्दुस्तान में दोहराया जायगा?

यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक होगा कि कुछ विदेशी अथवा बहके हुए हिन्दुस्तानी लोगों के इस कथन में कोई सचाई नहीं कि हिंदूस्तान में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। सचाई तो यह है कि हिन्दुस्तान की भाषा विशेष रूप से हिंदी ही है, जिसे ७२ प्रतिशत लोग पढ़-लिख या समझ सकते हैं; किंतु फिर भी भारतीय भाषाओं की संख्या कुछ-एक ही है। बाकी सब बोलियाँ हैं। उन की स्थिति वही है जो ब्रिटिश

में स्काटिश और वेल्श की है और फिर रूस में भी तो कितनी ही भाषाएँ और बोलियाँ बरती जाती हैं; इसलिए भाषाओं का प्रश्न भी कोई ऐसा नहीं है जो भारत में एक जातीयता, एक देशीयता होने और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने में बाधक हो और फिर ऐसी अवस्था में जब कि इनका भी संतोषजनक सुलझाव किया जा रहा है।

अब रहा हिन्दुस्तान के विस्तृत होने का विचार। पोलिटिकल साइंस (राजनीति-विज्ञान) के विद्यार्थी इस बात से सहमत हैं कि राष्ट्र हर प्रकार से इतना विस्तृत होना चाहिए कि कोई दूसरा देश उसे सरलता से और एकाएक दबोच न ले, जैसा कि जर्मनी ने हालैंड, बेल्जियम और डेनमार्क को किया है। इसलिए यह तो भारतवर्ष का सौभाग्य है कि प्रकृति ने इसे इतना विस्तृत बनाया है,— और इतने विस्तृत साधन दिए हैं कि यदि वह उन से पूरा-पूरा लाभ उठावे तो संसार की कोई भी शक्ति अकेली तो क्या अन्य देशों से मिल कर भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकती। आज यदि जर्मनी रूस में अपनी अनुचित इच्छाएँ सफल न कर सका तो इसका कारण रूस की सैनिक शक्ति और सर्वोत्तम जातीय संगठन तो है ही, लेकिन उसकी सुरक्षा का रहस्य उसका सुविस्तृत होना ही है, जिसकी पश्चिमी और पूर्वी सीमाओं के मध्य आठ हज़ार मील का अन्तर है। दूसरी ओर यदि आप संयुक्त राज्य अमेरिका का मानचित्र देखें जिसका क्षेत्र-फल रूस को छोड़ कर शेष संपूर्ण यूरोप से डेढ़ गुना है तो आपको विदित होगा कि अमरिका का पूर्वी बंदरगाह न्यूयार्क और पश्चिमी सॉनफ्रांसिसको या लाज एंजेलस के मध्य उतना ही अन्तर है जितना कि न्यूयार्क और लंडन के मध्य अर्थात् ३५०० मील। यही अवस्था चीन की भी है। अब भारतवर्ष का मान-चित्र देखिए। लंबाई चौड़ाई दो

हज़ार मील से अधिक नहीं। किंतु यदि आप संसार के परिवर्तन का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो आप को मालूम होगा कि उन अवस्थाओं में तो यह विस्तार भी अपर्याप्त है। अब छोटे-छोटे देशों का युग नहीं रहा बल्कि अब तो संसार को कुछ-एक बड़े-बड़े भागों में विभाजित करने के लिए उसकी नई सीमाबंदी सोची जा रही है। अठारहवीं शताब्दी की व्यावसायिक क्रांति ने संसार का स्वरूप सर्वथा बदल दिया है। इस क्रांति के दो बड़े परिणाम 'abolition of distance' और "change of scale in human operation" (दूरी का अन्त और मानवीय क्रियाओं का माप-परिवर्तन) की शकल में हमारे सामने हैं। दूसरे शब्दों में रेल, टेलीफोन, रेडियो, तार, बेतार, वायुयान और टेलिविजन आदि के द्वारा यातायात की तीव्रतम सुविधाओं के कारण अधिक दूरी का कोई मूल्य नहीं रहा; क्योंकि आज तो आप कुछ ही दिनों अथवा सप्ताहों में सारे संसार का चक्कर लगा कर घर वापिस आ सकते हैं। घर बैठे रेडियो द्वारा पल पल के संवाद सुन सकते हैं। सहस्रों मील पर बसे हुए संबंधियों से टेलीफोन पर बात-चीत कर सकते हैं। सचमुच संसार एक Closely knit यूनिट अथवा एक सम्मिलित प्रदेश बन गया है। अब विभिन्न देशों के निवासी ऐसा अनुभव करते हैं जैसे कि एक दूसरे के पड़ोसी हों।

दूसरी ओर यदि आप सोचें तो आप को विदित होगा कि इस वैज्ञानिक उन्नति के साथ ही साथ मनुष्य की आवश्यकताओं में परिवर्तन आ गया है। आज यदि आप एक साधारण मनुष्य के सामाजिक आर्थिक अथवा राजनीतिक जीवन की मध्य-कालीन मनुष्य से तुलना करें तो आप को स्पष्ट रूप से यह भारी अंतर दिखाई देगा। आज का मानव पहले से अधिक सामाजिक है—वह अधिक से अधिक सामूहिक जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी

स्वदेशीय और स्वजातीय सीमाओं को तोड़ कर आगे जाना चाहता है। किंतु इस सामाजिक पहलू के अतिरिक्त भी मानव अपनी सुरक्षा के विचार से ऐसा करने के लिए बाध्य है, क्योंकि विज्ञान की संहारक शक्तियों और तीव्र गति वाले यातायात के साधनों द्वारा शत्रु को उस पर आक्रमण करने की भी सरलता मिल गई है। अब तो इतने द्रुतगामी वायुयान बन चुके हैं कि किसी भी देश की राजधानी पर उसकी सीमा से परे एक घंटा के अंतर से बमबारी हो सकती है। इसके अतिरिक्त टैंक की भयानक शक्ति का आविष्कार हो चुका है जिसके संबंध में कहा जाता है कि एक टैंक में इतनी ताकत है जितनी कि जर्मनी के विलियम प्रथम की सारी सेना में भी न थी और ये टैंक और हवाई जहाज़ ही थे जिन्होंने फ्रांस जैसी महान शक्ति को कुछ ही दिनों में समाप्त कर दिया। यही कारण है कि आज संसार के महान मस्तिष्क इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि देशों की वर्तमान सीमाएँ बदल दी जायँ, और विभिन्न छोटे छोटे देशों को मिला कर एक यूनियन या फेडरेशन स्थापित किया जाय, जिससे कि शक्ति का दुरुपयोग न हो और मनुष्य अधिक से अधिक सुरक्षित रह सके। वैसे भी यह जान पड़ता है कि वर्तमान युद्ध जो विस्तृत रूप से राष्ट्रीय, सामाजिक और आर्थिक क्रांति का स्वरूप है जहाँ साम्राज्यवाद को समाप्त कर देगा वहीं संकुचित राष्ट्रीयता को भी और इसका परिणाम हर हालत में यह होगा कि मनुष्य के संगठित जीवन का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा। चाहे वह मिस्टर एच.जी. वेलस के विचारों के अनुसार दुनियां के एक फेडरेशन के रूप में हो या अमरीका के मिस्टर क्लेरेंस स्ट्रेट के कथनानुसार संपूर्ण प्रजा-तंत्रों के संगठन के रूप में हो अथवा पं० जवाहरलाल नेहरू के कथनानुसार चीन और हिंदुस्तान के एक फेडेरेशन या उसी प्रकार को किसी ग्रुप (समूह) फेडेरेशन के। किंतु इस समय

यह प्रश्न मेरी चर्चा का विषय नहीं। इस समय तो मुझे यह बताना अभीष्ट है कि हिंदुस्तान हर तरह से एक है, उसे महाद्वीप कहना मूर्खता है। यह विचार ब्रिटेन के प्रोपेगंडा और मुस्लिमलीगियों की अदूरदर्शिता का दुष्परिणाम है। इसे प्रकृति ने इतना सुदृढ़ बनाया है कि अपनी रक्षा के लिए किसी और के आसरे की आवश्यकता नहीं।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

हिन्दुस्तान का हिन्दू मुस्लिम या अल्पमतों का प्रश्न दुनियाँ की उन थोड़ी सी समस्याओं में से है जिन्हें सरलतम कहा जा सकता है। हिन्दुस्तान में कोई ऐसा विशेष राजनीतिक या जातीय अल्पमत नहीं पाया जाता जैसा कि रूस या केनेडा आदि में है जिस के कारण उन्हें इस प्रश्न को हल करने में कठिनाई पड़ती है। हिन्दुस्तान में अगर यह प्रश्न मुश्किल, और हिन्दुस्तान की भावी उन्नति में बाधक सिद्ध हो रहा है तो इस का कारण यह नहीं कि वास्तव में यह कठिन और जटिल है, बल्कि इसलिए कि इसमें पेंचीदगी पैदा की गई है। इस पेचीदगी की बुनियाद आज से ३२ साल पहले ब्रिटिश सरकार ने पृथक चुनाव के रूप में रखी, जिस ने बाद में पृथकता की मनोवृत्ति को उत्तेजन दिया। यही ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य था, जिस का अनुभव दुर्भाग्य से कांग्रेस उस समय न कर सकी। खैर, अब इस सिलसिले में ज्यादा अफसोस करने से कोई लाभ नहीं। अब तो हमारे सामने यह प्रश्न है कि इस समय हिन्दू-मुस्लिम समस्या जिस रूप में उपस्थित है, क्या हिन्दुस्तान का विभाजन और पाकिस्तान इस का कोई हल है, जो अब साफ जाहिर है, कि जिस उद्देश्य के लिये पाकिस्तान की माँगकी जाती

है वह इस से पूरा नहीं होगा। हिन्दू-मुस्लिम बहुमत और अल्पमत का सवाल ज्यों का त्यों बना रहेगा, बशर्ते कि वर्तमान नए हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की मुस्लिम और हिन्दू आबादियों का परिवर्तन न कर लिया जाय, और आबादियों का परिवर्तन कोई सरल काम नहीं। निस्सन्देह पाकिस्तानी मित्र कहते हैं कि वर्तमान पाकिस्तान के दो करोड़ हिन्दू और नए हिन्दुस्तान के एक करोड़ अस्सी लाख मुसलमान अपने बहुमत के शासनों में अल्पमतों के हितों की रक्षा की ज़मानत होंगे और उन की स्थिति "बंधक" की होगी। लेकिन ऐसा कहते हुए, शायद वह इन परिणामों को भूल जाते हैं जो इन "बंधकों" से उत्पन्न होंगे। ये "बंधक" भी उस विनाशकारी मनमुटाव के कारण होंगे जिस का चेकोस्लेवेकिया के सूडन जर्मन हुए—विशेष रूप में ऐसी स्थिति में जब कि पाकिस्तानी मुसलमान दूसरे मुसलमानों के विषय में केवल मुसलमान दृष्टिकोण से सोचने और अपने आप को ग़ैर हिन्दुस्तानी और एक अलग क़ौम मानने की धृष्टता कर रहे हैं। उन में 'पानइस्लामिज़्म' का प्रचार कर रहे हैं। और उनके इस कार्य से प्रभाविक होकर उत्तर-स्वरूप हिन्दू भी अपने अन्दर यही चीज़ पैदा कर रहे हैं। पाकिस्तानी मुसलमानों की वर्तमान मनोवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए हिन्दुओं में संकुचितता का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस के प्रकाश में हम कह सकते हैं कि अगर पाकिस्तानियों ने अपनी इस मनोवृत्ति को न बदला तो हिन्दुस्तान गृह-युद्ध का रंगमंच तो बनेगा ही—लेकिन इस के साथ ही उन की मनोवृत्ति अन्त में मुसलमानों के लिए भी हानिकारक सिद्ध होगा। एक मुसलमान नेता ने अपने एक निजी-पत्र में हिन्दू चरित्र के विषय में ठीक लिखा है—"हिन्दू को बहुत देर

से गुस्सा आता है—लेकिन जब गुस्सा आता है तो उस की हालत बिगड़े हुए शेर की तरह होती है।" जहाँ तक नए हिन्दुस्तान और वर्तमान पाकिस्तान का सम्बन्ध है उन में अल्पमत हिन्दू और अल्पमत मुसलमानों की रक्षा के लिए गृह-युद्ध का होना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति में आप शायद नहीं जानते कि ये "बंधक" इस में क्या क्या हिस्सा लेंगे। निस्सन्देह वही जो यूरोप के विविध देशों में और बर्मा और मलाया में उन लोगों ने लिया, जिन्हें "फिफ्थ कालम" के नाम से पुकारा जाता है। वास्तव में यह पाकिस्तान हमें सभ्यता के मार्ग से हटा कर असभ्यता और जंगलीपन की ओर ले जायगा। इस से हज़ारों हिन्दुस्तानी अपने घरों में ही विदेशी बन जायँगे और पासपोर्ट प्राप्त किए बिना स्वतन्त्रता से यात्रा भी न कर सकेंगे। वर्तमान हिन्दुस्तान के वे भाग जो इस समय एक होने के कारण एक-दूसरे के ऊपर निर्भर हैं, उन्हें अपने बीच टेरिफ़ और कस्टम ड्यूटी वगैरा की दीवारें खड़ी करनी पड़ेंगी। दोनों विभाग आर्थिक और सैनिक रूप में दुर्बल होंगे, और सदा के लिये दूसरे देशों के शिकार बने रहेंगे। वर्तमान पाकिस्तान के मुसलमानों को जो हानि होगी वह अलग, क्योंकि इस स्थिति में वे हिन्दुस्तान से वे आर्थिक लाभ प्राप्त न कर सकेंगे जो इस समय सीमाप्रांत और पञ्जाब के मुसलमानों को प्राप्त हैं।

इसलिये, ऐ हिन्दुस्तानी मुसलमानो, अपने क़दम रोको। ज़रा सोचो जिस रास्ते पर आप को चलाया जा रहा है वह न केवल हिन्दुस्तान और हिन्दुओं के लिए ख़तरनाक है बल्कि आपके लिए भी। आप की वर्तमान कठिनाइयों का वास्तविक कारण वह नहीं जो आपके सामने उपस्थित किया जाता है। आप की कठि-

नाइयाँ वही हैं जो दूसरे हिन्दुस्तानियों की हैं। हम सब की मुसीबतें एक हैं और उन का लाभ 'एक अखण्ड और स्वतन्त्र' हिन्दुस्तान से ही हो सकता है। इस स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के प्रजातन्त्र शासन में आपको प्रत्येक प्रकार के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे। पाकिस्तान की योजना राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र और समानता के सिद्धांतों के प्रतिकूल होने के अतिरिक्त, साधारण स्थिति में साधारणतः और वर्तमान स्थिति में विशेष रूप से अस्वाभाविक और विनाशकारी भी है, और हर राष्ट्र-भक्त हिन्दुस्तानी का—चाहे व हिन्दू हो या मुसलमान, सिख हो या ईसाई, यह कर्तव्य है कि वह इसे कार्य रूप में न आने दे और विभाजनप्रिय लोगों को महात्मा गांधी के शब्दों में कह दे—"देश को विभाजित करने के पहले मेरे शरीर को काट दो।"

"Vivisect me before vivisecting the country"

नोट—जब मैं इस अध्याय को लगभग समाप्त कर चुका था तो मुझे मुस्लिमलीगी पत्र "डान" में सिंध असेम्बली के सदस्य मि० जी० एम० सईद के उस भाषण को पढ़ने का अवसर मिला जो उन्होंने सिंध-असेम्बली में 'पाकिस्तान' को स्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए हाल ही में दिया। इस भाषण में उन्होंने जिन विचारों को व्यक्त किया उनसे जान पड़ता है कि मुस्लिमलीगी लीडर राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र के इस युग में, वास्तव में 'क्रुसेडस' के सपने देख रहे हैं। यद्यपि वह मुँह से तो अपने आप को राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र और समानता के सिद्धानों का मानने वाला कहते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि वे इन्हीं सिद्धांतों के मूल्य पर हिंदुस्तान की भावी उन्नति के शत्रु सिद्ध हो रहे हैं। मि० सईद ने अपने इस लंबे भाषण में, जो एक तरह हिंदु जाति या हिंदू धर्म के विरुद्ध

निरर्थक, निर्मूल और सर्वथा असत्य बातों का पुलिंदा है, इस्लाम में भ्रातृभाव के सिद्धांत पर ज़ोर दिया है, लेकिन उन्हें यह याद रखना चाहिए कि इस समय हिंदुस्तान को केवल धर्म की एकता के आधार पर भ्रातृभाव की आवश्यकता नहीं बल्कि राष्ट्रीयता के आधार पर यह भाव उत्पन्न करने या तुर्की के प्रेस-मिशन के लीडर के कथनानुसार "विश्व-बंधुत्व" के सिद्धांत को अपनाने की आवश्यकता है, और अगर मि० सईद को इस बात का गर्व है कि इस्लाम में समता और भ्रातृभाव की भावना पाई जाती है तो हिंदुओं को इस बात का गर्व है कि हिंदू धर्म बुनयादी तौर पर इससे भी आगे 'विश्व-बंधुत्व' के सिद्धांतों को मानता है। हिंदू विश्वव्यापी जातीयता से भी आगे मानवता के सिद्धांतों पर बनी है। इस में कोई संदेह नहीं कि इसमें ज़माने के परिवर्तन के साथ साथ कुछ कमियाँ आगई हैं—लेकिन ये कमियाँ केवल बाहरी हैं और बुनियादी तौर पर हिंदू जाति अब भी उन्हीं सिद्धांतों पर कायम हैं, और यद्यपि इन्हीं सिद्धांतों ने हिंदुओं को शक्तिशाली जाति के रूप में उन्नति नहीं करने दी, लेकिन इसी के साथ यह भी सत्य है कि इन्होंने इसे ज़माने के इन परिवर्तनों के सामने, जिन्होंने यूनान मिश्र और रूम की पुरानी सभ्यताओं का नाम-निशान मिटा दिया, हिंदू संस्कृति और हिन्दू सभ्यता को आज तक जीवित रखा है—और निस्संदेह भविष्य में भी जीवित रखेंगे। अतएव इस प्रसंग में मैं मि० सईद को निमंत्रण देता हूँ कि यदि वह तअस्सुब की पट्टी को आँखों से उतार कर हिंदुत्व का उसकी आंतरिक आत्मा में अध्ययन करने का यत्न करेंगे तो मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि उनको स्व० सी० एफ़० एंड्रूज के इन शब्दों में सोलह आने सचाई दिखाई देगी।

"हिंदू धर्म की दुर्बलता केवल ऊपर से है। उसकी गहराइयों में इतनी नैतिक शक्ति मौजूद है जिसे मनुष्य जाति कभी भी छोड़ना न चाहेगी।"

इसलिए मैं मि० सईद से कहूँगा कि वह हिंदुओं की तथा-कथित पुराण-प्रियता की आड़ में पाकिस्तान का समर्थन करके मुसलमानों के अन्दर वैसी ही पुराण-प्रियता उत्पन्न न करें, जिसे कि सारा संसार छोड़ चुका है और हम हिंदुस्तानी छोड़ने का यत्न कर रहे हैं। वे ये विचार अपने अन्दर से हटा दें कि हिंदुत्व में वह लचक नहीं है और उसमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन नहीं हो सकता, जितनी लचक (Flexibility) हिंदुत्व में पाई जाती है, उतनी शायद ही किसी और धर्म में पाई जाती है, और मैं तो यहाँ तक कहने का साहस करता हूँ कि हिंदुओं में—विशेष कर मुसलमानों के प्रति—जितनी कट्टरता पाई जाती है वह सब मुसलमानों की पाकिस्तानी मनोवृत्ति के कारण ही है जो आरम्भ से लेकर अब तक मौजूद है। निश्चय ही इसके और भी अनेक कारण हैं, किंतु सचाई यह है कि मुसलमान पहले विदेशी आक्रमणकारी हैं जिन्होंने हिंदुस्तान में अपना शासन स्थापित करने के बाद 'दारूल इस्लाम' (इस्लामी राज्य-व्यवस्था) और 'दारूल अरब' की लाइनों पर सोचते हुए यहाँ के लोगों को मुसलमान बना कर हिंदुस्तान में विशुद्ध इसलामी शासन स्थापित करना चाहा। हिंदुओं में इसकी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था। अतएव मुसलमानों का मज़हबी जुनून ही हिंदुओं और मुसलमानों में पृथकता की दुर्भावना भरने का कारण हुआ है, यद्यपि वे दोनों हिंदुस्तानी थे। किंतु जैसा कि मैंने पहले कहा, चूंकि उस समय लोगों में राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न नहीं हुए थे और सम्प्रदाय ही समाज का आधार था इसलिए उस समय ऐसा होना कोई अचंभे

की बात नहीं। वर्तमान काल में चूंकि मुस्लिम लीगी लीडरों के कारण सर्व साधारण मुस्लिम जनता में अभी तक वही मज़हबी जुनून कायम है इसलिए उनके साथ पृथकता की वर्तमान भावना चली आ रही है—और उस समय तक चली जायगी जब तक मुस्लिम लीगी लीडर मुस्लिम जनता को विशुद्ध राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से सोचने का सुअवसर न देंगे। मेरा यह विश्वास है कि जिस समय मुसलमानों की यह दुर्भावना समाप्त हो जायगी उस समय वे हिंदुत्व के उस लचीलेपन का पूरा पूरा लाभ उठा सकेंगे जिसका कि उनसे पहले आने वाले अहिंदुओं ने उठाया।

मि० सईद ने अपने भाषण में ज़्यादा ज़ोर इस बात पर दिया कि जीवन के संबन्ध में हिन्दुओं और मुसलमानों के बुनियादी दृष्टिकोण में पूर्व पश्चिम का अंतर है। उनका सारा दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाज, भाषा भेष-भूषा और सभ्यता-संस्कृति आदि हिन्दुओं से भिन्न हैं। जहाँ तक इन बातों का वर्तमान विषय से संबन्ध है मैं पहले ही उत्तर दे आया हूँ। शेष बातों के विषय में मैं यहाँ इतना कहूँगा कि मज़हबी दृष्टिकोण से तो मुसलमानों के दर्शन और सामाजिक रीति-रिवाजों की विभिन्नताएँ समझ में आसकती हैं—लेकिन जातीय दृष्टिकोण से नहीं और इस विषय में उन्हें अपने दृष्टिकोण में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। आज से केवल २०—२५ वर्ष पहले जबकि तुर्की में उसमानिया सल्तनत कायम थी तब वहाँ भी इसलामी शासन कायम था, अरबी या फ़ारसी उसकी भाषा थी, तुर्की का रहन सहन भी अरबी था। उसका सारा साहित्य भी अरबी में था और जीवन के समस्त व्यापार अरबी थे। किन्तु जब कमालपाशा ने तुर्की राष्ट्रीय विचार से और राष्ट्र के संबन्ध में विशुद्ध राजनीतिक, आर्थिक और सामा-

जिक दृष्टिकोण से सोचा तो उन्हें इस सारी अवस्था को बदलने में कोई अधिक असुविधा नहीं हुई। यह विचार आते ही उन्होंने तुर्की की हर वस्तु से इस्लामी और अरबी रङ्ग उड़ा दिया। और Turkeyfication (टर्कीफिकेशन) पालिसी अपना कर उसका काया पलट कर डाला। वहाँ के इतिहास ने मिश्र, ईरान और दूसरे इस्लामी देशों में अपने आपको दुहराया। इतना ही नहीं चीन के मुसलमानों की मिसाल सामने है। इस्लाम के अनुयायी होते हुए भी उनके सामाजिक रस्म-रिवाज और जीवन के आधार भूत सिद्धांत वही हैं जो हिंदुस्तानी मुसलमानों के हैं। किंतु फिर भी उन्होंने उन सिद्धांतों पर सांप्रदायिक दृष्टिकोण से नहीं सोचा। इस बात की हठ नहीं की कि विशुद्ध राष्ट्रीय विचारों में भी वह सांप्रदायिक दृष्टिकोण का समावेश करें। यदि ऐसा होता तो वे भी शरियत का शासन और पाकिस्तान की माँग करते। किंतु उन्हें तो इसकी आवश्यकता नहीं हुई। और न हिंदुस्तानी मुसलमानों को होनी चाहिए, यदि वे राष्ट्र के सम्बन्ध में शरियत के दृष्टिकोण से सोचना छोड़ दें और मिश्र ईरान आदि की तरह अरबी रङ्गत उड़ा कर हिन्दुस्तानियत का जामा पहनें और हिन्दुस्तान में रहते हुए जो न केवल उनकी बपौती है बल्कि वह उनकी जन्मभूमि भी है, अपने आपको पहले हिंदुस्तानी और पीछे मुसलमान समझें। प्रश्न केवल दृष्टिकोण के परिवर्तन और उन नई आवश्यकताओं को समझने का है जो मानव-विचारों में परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुई हैं।

जहाँ तक हिन्दुओं का सम्बन्ध है उन्होंने मनुस्मृति अथवा अन्य स्मृतियों के आधार पर हिन्दुस्तान में शासन स्थापित करने की माँग कभी नहीं की। स्वतन्त्र भारत के सम्बन्ध में उन का दृष्टि-

कोगा सदा प्रजातन्त्र ही रहा है। यदि कुछ हिन्दुओं ने इस के विरुद्ध सोचा भी है तो वह केवल उत्तर के रूप में। और विश्वास-पूर्वक कहा जा सकता है कि ज्यों ही मुस्लिम लीग अपने रवैये में परिवर्तन करेगी—वे भी अपने आप को बदलने के लिए बाध्य होंगे, अन्यथा उन के विरुद्ध भी वैसा ही विरोध उठ खड़ा होगा जैसा कि इस समय मुस्लिम लीग का हो रहा है। किन्तु देश-भक्ति की भावनाओं से भरे हुए हिन्दुओं से ऐसी आशंका नहीं। मिस्टर सईद के कथनानुसार हिन्दुस्तान सचमुच दक्षिणी अफ्रीका अथवा यूरोप के समान एक महाद्वीप है और उस में अनेक जातियाँ बसी हुई हैं तो क्या वह हिन्दुओं और मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य जातियों को भी आत्म-निर्णय का वही अधिकार देने को तैयार होंगे जो मध्य यूरोप की जातियों को प्राप्त है। मुसलिम लीगी लीडरों को इस बात का विश्वास होना चाहिये कि यदि उन्होंने अपने लिए इस अधिकार पर ज़ोर दिया तो उन लोगों को भी अवश्य ही यह अधिकार देना होगा जिन्हें इस समय वे उपजातीय-दल (Sub Nation'Group) कह कर टाल रहे हैं। परिणाम यह होगा कि हिन्दुस्तान में एक नहीं अनेक पाकिस्तान बनेंगे। और हिन्दुस्तान को बलकान बनाने से यहाँ भी युद्ध के वही दृश्य दिखाई देंगे जो बल्कानके कारण आज यूरोप में दिखाई दे रहे हैं। सचमुच वर्तमान युग में ऐसी स्थिति उत्पन्न करना राजनीतिक रूप में अपनी हत्या करना है।

मि० सईद कहते हैं कि 'तथाकथित पाकिस्तान आर्थिक रूप में कमज़ोर अवश्य होगा किन्तु यह कोई ऐसा कारण नहीं जो हमारी (मुसलमानों की) स्वाधीनता की राह में बाधक हो। शायद मि० सईद नहीं जानते कि आर्थिक सुदृढ़ता आजकल राजनीतिक स्वतन्त्रता से भी अधिक महत्वपूर्ण है। उस के बिना आज राजनीतिक

स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं। आज तो वही राष्ट्र अथवा देश जीवित रह सकता है जो सैनिक रूप से शक्तिशाली होने के साथ ही साथ आर्थिक रूप से भी सुदृढ़ हो।

हिन्दुस्तान सम्मिलित रहते हुए यदि स्वतन्त्र हो जाय तो वह अपने प्राकृतिक साधनों की उन्नति कर सकता है और संसार की ऐसी सुदृढ़ शक्ति बन सकता है कि संसार का कोई भी एक देश अथवा विभिन्न विदेशी शक्तियों का संगठन भी उस की ओर आंख उठा कर नहीं देख सकता। इसे सुदृढ़ शक्ति बनाने के लिए ही शायद प्रकृति ने इसे अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को स्वयं पूर्ण कर सकने के योग्य बना कर अपने आप में इसे एक आर्थिक इकाई (Self supporting unit) बनाया है। सब प्रकार के आवश्यक पदार्थ खाने-पीने की वस्तुएँ और व्यवसाय-सम्बन्धी सामग्रियाँ इस देश के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं और ये भाग जंजीर की कड़ियों के समान एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि इन की पृथकता न केवल अप्राकृतिक बल्कि उन के अपने हित के भी विरुद्ध है। उदाहरण स्वरूप कोयले का सम्पूर्ण भण्डार हिन्दुस्तान के उत्तर पूर्वी भागों में भरा हुआ है और कलकत्ते के बन्दरगाह का यातायात अधिकांश में कोयले का ही है। उत्तर-पूर्वी भारत अपने देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भी बाहरी देशों को भी भारी मात्रा में कोयला देता है। अभी जब युद्ध काल में देश के कुछ भागों को जब कोयले की कठिनाई उपस्थित हुई तो चूंकि वे एक केन्द्र से सम्बद्ध थे इसलिये उन की आवश्यकता रेलगाड़ियों का विशेष प्रबन्ध कर के पूरी कर दी गई। पंजाब में गेहूँ की उपज अधिक होती है। वह न केवल अपने प्रान्त अथवा अपने देश को बल्कि कराची के बन्दरगाह से दूसरे देशों को भी गेहूँ भेजता है। और खाद्य पदार्थों की कमी के कारण बिगड़ी हुई स्थिति पर अभी-

अभी जो काबू पाया गया है वह आस्ट्रेलिया के गेहूँ से नहीं बल्कि पंजाब के गेहूँ से।

इस के अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल और बिहार लोहे और फौलाद की कारीगरी का केन्द्र हैं। बम्बई और मद्रास में अधिकतर कपड़े के कारखाने हैं, क्योंकि गुजरात, काठियावाड़ की भूमि कपास की खेती के लिए बहुत उपयोगी है। गन्ने की अधिकता के कारण संयुक्तप्रांत में खांड के कारखाने खुले हुए हैं जो अब सम्पूर्ण भारत की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। महत्व की बात तो यह है कि हिन्दुस्तान के विभिन्न भाग आर्थिक रूप से एक दूसरे पर निर्भर हैं और इसीलिए राष्ट्रीयता के आधार पर उन की उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है। और हिन्दुस्तान की पूर्ण आर्थिक उन्नति इसी आधार पर सम्भव है जिस पर कि प्रकृति ने आर्थिक रूप में उसे एक इकाई बनाया गया है। इसलिए आवश्यक है कि उस की इस एकता को स्थिर रखा जाय। राजनीतिक कारणों से उनका विभाजन उस की आर्थिक शक्ति का सत्यानाश कर देगी। आर्थिक रूप में एक रहने से जहाँ एक ओर हिन्दुस्तान शेष संसार में अपना महत्व प्राप्त कर सकता है वहाँ अपने जीवन के धरातल को भी ऊँचा कर सकता है और वह आर्थिक दुरवस्था और दरिद्रता, जिस के कारण आज लाखों करोड़ों हिन्दुस्तानी मर-भुखों का जीवन बिता रहे हैं, दूर हो सकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दुस्तान की गरीबी की आज यह हालत है कि जहाँ इंगलैण्ड में ४५ लाख व्यक्तियों की साप्ताहिक औसत आय १० शिलिंग प्रति व्यक्ति है, पौने दो करोड़ की २० शिलिंग प्रति सप्ताह तक है वहाँ हिन्दुस्तानी के करोड़ों व्यक्तियों को भर पेट रोटी नहीं मिलती। और यथार्थ में यह दरिद्रता और आर्थिक दुरवस्था ही हिन्दुस्तान की सब से बड़ी समस्या है। यह तभी

सुलझ सकती है जब कि उस की एकता स्थिर रखी जाय। और उस के आर्थिक साधनों से पूरा पूरा लाभ उठाया जाय, जो काम केवल राष्ट्रीय सरकार ही कर सकती है। अन्त में मैं मि० सईद और दूसरे मुस्लिम लीगियों से प्रार्थना करूंगा कि वह वर्तमान स्थितियों पर ठीक रीति से विचार करें और सर्वसाधारण जनता के साम्प्रदायिक भावों को उभाड़ कर उन्हें पथ-भ्रष्ट न करते हुए हिन्दुस्तान को आगे बढ़ाने दें। उस की सीमाएँ स्वाभाविक हैं और स्वाभाविक ही रहनी चाहिएँ। जहाँ कहीं भी मानवीय हाथों ने प्राकृतिक सीमाओं को बदला है वहीं सर्वनाश और संहार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हुआ। पाकिस्तान में रक्त-पात के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कितनी कठिनाइयों के बाद संसार को 'क्रूसेड' और मज़हबी जुनून के युद्धों से मुक्ति मिली है अब फिर उसी इतिहास को दोहराने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति ने इस देश को महान् बनाया है हमें चाहिये कि हम अपने प्रयत्नों द्वारा उसे महानतर बनाने में सफल हों।

चौथा अध्याय

स्वतन्त्र पंजाब

१. सांप्रदायिक कटुता की पराकाष्ठा

"The decay of the moral Calibre of a nation paves the way for a foreign domination which in turn accelerates the process of decline by its very existnce" says Late L. Hardayal.

प्रो० सीले लिखते हैं—"कोई भी जाति उस समय तक परतन्त्र नहीं बनाई सकती जब तक कि उस के नैतिक जीवन में

दुर्बलता न आवे। नैतिक जीवन की गिरावट ही विदेशी शासन का कारण और कार्य है। जिस प्रकार ज्वर उसी व्यक्ति को होता है जिन का मैदा कुपथ्य या कुस्वास्थ्य के कारण इतना दुर्बल हो गया हो कि वह रोग के कारणों अथवा शारीरिक शक्ति हीनता का सामना न कर सके, इसी प्रकार कोई भी जाति स्वतन्त्रता के जन्मसिद्ध अधिकारों से उस समय तक वंचित नहीं की जा सकती जब तक कि वह आर्थिक प्रलोभनों अथवा विषयभोगों अथवा दुराचरणों में पड़कर जातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता के गुणों को न भूल चुकी हो। और उस के निवासी अपने राष्ट्र के सामूहिक उत्तरदायित्व का अनुभव करना न भूल गए हों। यह बात विशेष रूप से उन बड़ी जातियों के सम्बन्ध में सोलहों आने ठीक है जो अपने से छोटी जातियों की गुलाम बनती हैं, क्योंकि इस अवस्था में छोटी जाति यद्यपि संख्या के हिसाब से कम शक्तिशाली होती है लेकिन नैतिक चरित्र-बल में उस से बढ़ कर।"

एक और दार्शनिक लिखते हैं—"यदि विजित जाति की जनता अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान और जातीय गौरव को स्थिर रखने में समर्थ हो और शताब्दियों की विदेशी दासता उनकी इस मनो भावना को मिटा न सके तो किसी न किसी दिन वह स्वतन्त्रता की धरोहर प्राप्त कर ही लेती है। दासता के इन दिनों में विजित जाति की जनता का सब से बड़ा कर्तव्य यह होना चाहिए कि वह अपने जातीय अभिमान और राष्ट्रीय गौरव की भावना को सुरक्षित रक्खे और इस बात का विचार रक्खे कि कहीं यह उन अवनति उत्पन्न करने वाले प्रभावों से दबा न दी जाय जिनका उत्पन्न करना विदेशी शासन की ओर से आवश्यक और स्वाभाविक है। विदेशियों की दासता का आवश्यक परिणाम उन गुणों का

विनाश होना होता है जिनके द्वारा एक स्वतन्त्र और परतन्त्र व्यक्ति का अंतर आँका जा सकता है। इन गुणों के विनाश का अर्थ उस जाति की मृत्यु है। सचमुच जात्याभिमान गिरी हुई जाति का एक बहुमूल्य खज़ाना है। धन-संपत्ति पुनः प्राप्त की जा सकती है, लेकिन जातीय अभिमान और राष्ट्रीय गौरव फिर हाथ नहीं आते। उसे अपनी उन्नति और विकास की आशा ही नहीं रहती क्योंकि जो अपने चरित्र, अपनी आत्मा और अपने जीवन से रहित हो जाती है, उस मृत जाति को संसार के ऐश्वर्य कहाँ प्राप्त हो सकते हैं ?"

आइए अब हम अपनी स्थिति की ओर देखें, और इस बात पर विचार करें कि ये दो आधारभूत सिद्धांत हमारी स्थिति के संबन्ध में कहाँ तक लागु होते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जब तक हिन्दुओं ने अपने जातीय गौरव को स्थिर रक्खा तब तक वे न केवल स्वतन्त्र रहे बल्कि अपनी सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचे, और संसार की दूसरी जातियों पर भी अपनी महानता की छाप छोड़ गए। किन्तु दूसरी ओर इस सचाई में भी सन्देह नहीं कि वे अपनी चरित्रहीनता के कारण विदेशी मुसल-मानों के गुलाम बने। यद्यपि सभ्यता और संस्कृति के आधार पर इतनी ऊँची जाति में गिरावट आने की बात बहुत ही आश्चर्य जनक है, किन्तु यह असत्य नहीं कि यदि वह आर्थिक प्रलोभनों और सांसारिक विषय वासनाओं में पड़ कर जातीय अभिमान को भूल न जाती तो स्वतन्त्रता का यह जन्म-सिद्ध अधिकार कोई उस से छीन न पाता। किन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि उसमें अभी तक उन गुणों का सर्वथा लोप नहीं हो गया था इसलिए वह जीवित रह सकी। इस बचे-खुचे आत्म-गौरव के आधार पर उसने अपने आपको फिर से ऊपर उठाने का यत्न किया। किन्तु ठीक उस समय जब कि मुसलमान शासकों में दुर्बलता आजाने के

कारण उनकी (हिन्दुओं की) उन्नति की आशा हुई, हिंदुस्तान में एक ऐसी तीसरी शक्ति आ पहुँची, जो यद्यपि संख्या के विचार से कम शक्ति-शाली थी, किन्तु चारित्रिक विचार से बहुत ऊँची थी और वह हिन्दू और मुसलमान दोनों पर छा गई। इससे पहले जो शासक और शासित थे अब एक धरातल पर आ गए।

इस अवस्था में हिन्दुस्तान की मुक्ति का उपाय यह था कि या तो वे शुद्ध हिन्दू जातीयता के आधार पर नए शासकों के विरुद्ध भी अपने उस स्वतन्त्रता युद्ध को जारी रखते जिसे उन्होंने मुसलमान शासकों के विरुद्ध पहले से ही शुरू किया था अथवा हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल कर अपने सांप्रदायिक मतभेदों को भुला कर अपने आप को एक ही राष्ट्र का निवासी और समान-धर्मी सैनिक समझते हुए स्वतंत्रता-युद्ध में संलग्न होते। किन्तु ऐसा करने के पहले यह आवश्यक था कि दोनों इस बात को भली भाँति समझ लेते कि सांप्रदायिक रूप से अलग अलग होते हुए भी राष्ट्रीयता के विचार से ये दोनों एक हैं और उनका हित एक है, क्योंकि साझी शत्रु के मुकाबले में केवल संयुक्त होना ही आवश्यक नहीं था, बल्कि अपने समान हितों को समझ लेना भी आवश्यक था, जैसा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के हमारे पहले प्रयत्न से प्रकट है, जो पेशवा, होलकर, निज़ाम और हैदरअली ने मिल कर किया था। साझी दुश्मन के विरुद्ध एकता के मार्ग में सब से बड़ी दुर्बलता यह होती है कि यदि शत्रु अधिक चालाक हुआ और उसका मुकाबला करने वालों के संगठन का आधार दुर्बल हुआ तो वह उन्हें फोड़ लेने में सफल हो जाता है। अंग्रेज़ों के आने पर हिन्दुस्तानियों के लिए गुलामी से मुक्त होने के दो ही मार्ग थे। एक हिन्दू जातीयता को अपनाने का और दूसरा हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता पर चल कर आगे बढ़ने का, (यद्यपि ये दोनों मूल में एक ही हैं) और यह कहने की

आवश्यकता नहीं कि हिन्दुस्तानियों ने दूसरा मार्ग अपनाया अर्थात हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर उस तीसरी शक्ति के विरुद्ध आज़ादी का युद्ध शुरू किया जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान में उस राष्ट्रीय आंदोलन का आरम्भ हुआ जो आज इंडियन नेशनल कांग्रेस के रूप में हमारे सामने मौजूद है। अब दो शक्तियों के मध्य टक्कर थी। एक ओर इंडियन नेशनल कांग्रेस थी जिसका ध्येय विदेशी शासन का अंत करना था और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार थी, जिसकी कोशिश स्वभावतः यह थी कि जैसे भी बने वह अधिक से अधिक समय तक यहाँ अपना शासन कायम रख सके। इस टक्कर में कांग्रेस की सफलता इस बात में थी कि जहाँ वह हिन्दुस्तानियों के नैतिक चरित्र को अधिक से अधिक ऊँचा बनाती और उन में क्रमशः आत्म-निर्भरता उत्पन्न करती वहीं उन के राष्ट्रीय संगठन को तोड़ने वाले हरेक ऐसे प्रयत्न को असफल कर देती जिस का होना ब्रिटिश सरकार की ओर से स्वाभाविक था। दूसरी ओर ब्रिटेन की सफलता इस बात में थी कि हिन्दुस्तानियों के राष्ट्रीय जीवन में गिरावट लाए और जात्याभिमान की भावना को दुर्बल बनाए। अस्तु, दोनों ने अपने अपने उद्देश्यों में सफलता की कोशिश की। और इस में कोई सन्देह नहीं कि इस कोशिश में कांग्रेस को कुछ सीमा तक सफलता मिली और वह समय आया जब कि हिन्दुस्तानियों के जात्याभिमान और राष्ट्रीय गौरव से भरे हुए भावों के आगे ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। किन्तु खेद है कि कांग्रेस अपने सर्वोत्तम प्रयत्नों के द्वारा भी उस अवस्था को स्थिर न रख सकी और ब्रिटिश सरकार कुछ तो अपनी चालाकी से और कुछ कांग्रेस की हिमालय जैसी भूलों से हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता और हिन्दू-मुस्लिम एकता की जड़ों की कमज़ोरी से लाभ उठाने में

सफल हो गई, और उन ने हिन्दुस्तान की राजनीति में ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न कर दीं जिन के द्वारा हम हिन्दुस्तानियों में उस मात्रा में राष्ट्रीय चरित्र-बल और जातीयता का अभिमान न रहा जिस मात्रा में होना एक गुलाम देश को स्वतन्त्र होने के लिए आवश्यक था। परिणाम यह हुआ कि वह अपनी आज़ादी के आन्दोलन में सफल न हो सकी और स्व० लाला हरदयाल के कथनानुसार "हिन्दुस्तान के नैतिक चरित्र की कमज़ोरी से लाभ उठा कर विदेशी शक्ति अपने शासन की जड़ें जमाने में सफल हो गई और इस आक्रमण ने उस आचरण को और भी अधिक क्षीण करते हुए अपना शासन और भी दृढ़ बना लिया।"

यद्यपि मैं यह नहीं कहता कि नैतिक चरित्र-बल में हिन्दुस्तानी बहुत नीचे गिर गए हैं। क्योंकि ऐसा कहने का अर्थ फिर यह होगा कि हिन्दुस्तानी जाति सर्वथा मृत्यु को प्राप्त हो चुकी है, जो कि ठीक नहीं है। किन्तु इतना तो कहना ही होगा कि यह रोगी अब मृत्यु के साथ खेल रहा है। इस के शरीर से रक्त बह रहा है और इस रक्त स्राव को यदि शीघ्र न रोका गया तो इस के बचने की कोई आशा नहीं। किन्तु नहीं हमें आशा रखनी चाहिए कि हिन्दुस्तान के योग्य चिकित्सक और अधिक रक्त-स्राव को रोकने अथवा उस के सड़े-गले अंग को काट फेंकने में समर्थ होंगे और भारत नाम का यह रोगी अथवा एशिया का यह (अर्ध-जीवित) मुर्दा शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएगा।

जिन अवस्थाओं के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष में वर्तमान स्थिति उत्पन्न की थी और जिन्होंने भारत के जातीय आत्म-बल को कम किया वह वही साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व था जो कि सन् १९०९ ई० के धार्मिक संरक्षणों से शुरू होकर सन् १९३२ के कम्यूनल एवार्ड पर खत्म हुआ, जिस में इसे अधिक

स्वीकार किया गया अर्थात् जहाँ पहले हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न उत्पन्न किया गया वहाँ अब अछूतों गैर अछूतों, ब्राह्मणों अब्राह्मणों, किसान और गैरकिसान आदि को भी उसी तरह आगे लाया गया। और यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्था ने अकारण ही कम्यूनल एवार्ड को स्वीकार कर अपने ही पैरों पर आप कुल्हाड़ा चलाया, इस से राष्ट्रीय एकता तो क्या हुई और स्वाधीनता के आन्दोलन को बल तो क्या मिला, हाँ, इस के द्वारा हिन्दुस्तान में राष्ट्रीयता के साथ कम्यूनलिज्म (साम्प्रदायिकता) को पनपने का अवसर अवश्य मिल गया और आज यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि कम्यूनल एवार्ड देश के जातीय जीवन के लिए कितना सत्यानाशक सिद्ध हुआ है। इस से पहले केवल हिन्दू मुस्लिम प्रश्न था अब नित नए निराले प्रश्न उठ खड़े हुए और उठते जा रहे हैं। आज कल ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े हैं जो सामूहिक शक्ति के बल पर हिन्दुस्तान का हित-साधन चाहते हैं। अधिक संख्या उन लोगों की है जो अपने सम्प्रदाय के हित में ही समूचे देश का हित समझते हैं उन में अपने साम्प्रदायिक हितों का इतना पागलपन सवार है कि सामूहिक शक्ति की महत्ता उन की समझ में ही नहीं आती। एक ओर मुस्लिम लीग के क़ायदे आज़म मि० जिन्ना हैं जिन्हें नौ करोड़ मुसलमानों पर जो उन के कथनानुसार संसार के श्रेष्ठतम शक्तिशाली पुरुषों में से हैं, हिन्दुओं के (अत्याचारों) का भय सता रहा है। दूसरी ओर डाक्टर अम्बेडकर हैं जिन्हें अछूतों की वर्तमान दुरवस्था बदलने का यही उपाय सूझता है कि भारत के बन्धन की कड़ियों को सुदृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध हों! यद्यपि महात्मा गांधी के अतिरिक्त अन्यान्य हिन्दू नेता और समाज सुधारक स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर चुके हैं कि "अछूतपन के

इस कोढ़ को शीघ्र से शीघ्र समाप्त किया जाय"। तीसरी ओर हमारे चौधरी छोटूराम हैं जिन की सारी राजनीति जाट और अजाट पर समाप्त हो जाती है। स्वतन्त्र भारत में तो आर्थिक आधार पर विभिन्न दलों का एक दूसरे के विरुद्ध संगठित होना समझ में आसकता है किन्तु गुलाम हिन्दुस्तान में परस्पर विरोध भावनाएँ उत्पन्न करके राष्ट्रीय एकता को दुर्बल बनाने और अपनी सारी शक्ति इन्हीं कामों में लगाने में कौन सी दूरदर्शिता है इसे वही समझ सकते हैं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि उन्हें जाट और बनिये का झगड़ा यहाँ तक पहुँचा चुका है कि वह इस सचाई को अनुभव ही नहीं कर सकते कि आर्थिक दुरवस्था न केवल किसानों को ही सता रही है बल्कि यह वह राक्षस है जिसने भारत के ९९ प्रतिशत निवासियों को अपने पंजे में जकड़ रखा है और जिस के द्वारा भारतवर्ष सामूहिक शक्ति से हीन होकर एक स्वस्थ्य समाज बनने के अयोग्य हो गया है। यह प्रश्न जाट और बनिये का नहीं वरन् सारे देश का सामूहिक प्रश्न है। इस का कारण एक ही है और जब तक वह दूर नहीं होता तब तक इन आर्थिक समस्याओं का सन्तोषजनक सुलझाव असम्भव है। संभव तो वह स्वतन्त्र हिन्दुस्तान में ही हो सकता है जिस में कांग्रेस के कराची प्रस्ताव के अनुसार साहूकारी पर सख्त कण्ट्रोल होगा।

इस से पहले यदि कुछ हो सकता है तो यह कि किसानों को कुछ सहायता दी जाय जो कि कोई बहुत बड़ी बात नहीं, इसलिए आवश्यकता यह है कि चौधरी साहब इस सचाई का अनुभव करें और अनजान देहाती बनिये को ही किसानों की वर्तमान आपदाओं का कारण न बताते हुए उस बड़े बनिये के विषय में भी सोचें जो हम सब की गरीबी का कारण है। उन्हें विश्वास रखना चाहिये

कि स्वतन्त्र भारत में बणिक वृत्ति को समाप्त करने की खुली छुट्टी होगी।

इस के अतिरिक्त यह भी कह दूँ कि सर छोटूराम किसान और गैर किसान होना जन्म दाता बतला कर समाज में एक नये प्रकार की दलबन्दी पैदा कर रहे हैं।

किसान की हैसियत से उसे हर प्रकार की सुविधाएँ देना तो ठीक है, लेकिन किसान बन कर जन्म लेना बिल्कुल ग़लत और बेहूदा विचार है। दुनिया का कोई देश नहीं जिस में खेती का काम कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए निश्चित कर दिया गया हो। हरएक व्यक्ति को हर एक पेशा करने की स्वतन्त्र होनी चाहिये न कि यह कि जिसने एक बार खेतीका काम कर लिया वही किसान रहेगा, दूसरा नहीं हो सकता।

लगान कानून के विरुद्ध गैर ज़रायतपेशा हिन्दुओं का बुनियादी विरोध यही था जिसे चौधरी साहब ने समझने की कोशिश नहीं की। किसानों की सहायता करने का अच्छा उपाय यह था कि वर्तमान लगान कानून पास करने के बदले एक ऐसा कानून बनाया जाता जिस से किसान को बनिये से सुरक्षित रखने के साथ ज़मींदार से सुरक्षित रखा जा सकता। इस क़ानून के द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता कि कोई भी आदमी जो अपने ही हाथों से खेती नहीं करेगा ज़रायत पेशा न समझा जायगा और उसे ज़मीन खरीदने की आज्ञा न होगी। किन्तु उस अवस्था में चौधरी सर छोटूराम और मेज़र खिज़र हयात खाँ जैसे ज़मींदार नहीं रह सकते थे—जो कि केवल अपने मज़ारों (खेतिहर मज़दूरों) के गाढ़े पसीने की कमाई खा कर ही ज़मींदार बने हुए हैं। मज़दूर और किसान राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी हैं। इन की भलाई से ही समाज की भलाई है। इसलिए इन का सुधार समाज का प्रथम कर्तव्य है

किन्तु इन की आड़ लेकर एक पूँजीवाद को समाप्त करना और दूसरे को सुदृढ़ बनाना किसी तरह भी उचित नहीं। यों तो अब प्रजातन्त्र के इस युग में समाज को ऐसी पाबन्दियों में बाँधना किसी प्रकार भी हितकर नहीं। अब तो पुराने पचड़ों से बाहर निकालने का समय है। समाज को हर पहलू से स्वाधीनता की सांस लेने योग्य बनाने का समय है, इसे विभिन्न दलों और उप-जातियों में विभक्त करने का नहीं बल्कि दल हीन और वर्ण-व्यवस्थाविहीन बनाने का है। चौधरी सर छोटूराम ने जन्मजात जाट और अजाट का प्रश्न उठा कर जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन को कमज़ोर किया है वहाँ हिन्दुओं को सामाजिक रूप में एकता स्थापित करने से भी रोका है। मुझे यह कहते हुए कोई हिचक नहीं होती कि इस में अन्य हिन्दुओं का भी अपराध है जिन्होंने अपने हितों की रक्षा के लिए जाट और अजाट के विभाजन में सहायता की। किन्तु मैं चाहता हूँ कि अब वह इस भूल का अनुभव करें और इस समस्या को अधिक उलझने से रोकें।

किन्तु यह सब अवस्थाएँ जिस अधार पर उत्पन्न हुई वह कम्यूनल एवार्ड है। ये सम्पूर्ण अवस्थाएँ उस सांप्रदायिक कट्टरताकी पराकाष्ठा के अंग हैं जो पाकिस्तान और आजाद पंजाब की सूरत में हमारे सामने मौजूद हैं। ये अवस्थाएँ राजनीतिक प्रधानता प्राप्त करने या लीडरी चाहने वालों अथवा कौंसिल की सदस्यता प्राप्त करके मन्त्रिपद के अभिलाषिओं द्वारा उत्पन्न की गई हैं। जो सामूहिक रूप से हिन्दुस्तान को उन्नति के विचारों को पीछे फेंक कर अपने सम्प्रदायिक दुर्भावों से लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। इस प्रसंग में मुझे हिन्दुस्तानी ईसाइयों की आल इंडिया कौंसल के प्रधान डा० एच० डी मुकर्जी का एक लेख याद आ रहा:

है जो कुछ समय पूर्व उन्होंने अपने सम्बन्ध में 'फिरकापरस्ती से कौमपरस्ती' शीर्षक से लिखा था। इसमें उन्होंने कौंसिल के अपने चुनाव का उल्लेख करते हुये कहा—"इस समय तक मैंने फिरकापरस्ती और उसके प्रभावों के प्रति कभी इतना ध्यान नहीं दिया है क्योंकि सामूहिक रूप से मैं उसके पक्ष में भी नहीं था। मगर चुनावों की गरमागरमी और उससे उत्पन्न होने वाले जोशने मुझे अपने उस रवैये को बदलने को बाध्य किया और मैंने भी जवाबी तौर पर अधिक दृढ़ता के साथ उन्हीं फिरकादाराना जज़बात को अपील करनी शुरू कर दी। मैंने अपने वोटरों से कहना प्रारम्भ किया कि यदि वह मुझे असेम्बली का मेंबर निर्वाचित कर देंगे तो मैं उनके लिए यह करूंगा।" "By indignities people come to diginties." फिर वह कहते हैं "जब मैं असेंबली का मेम्बर निर्वाचित हो गया तो सचमुच मुझे यह विश्वास हो गया कि यदि मैं असेंबली में फिरकादाराना रवैया रखूंगा तो अपने ईसाई सम्प्रदाय के लिए विशेष अधिकारों की लगातार मांग करते हुए अपने सम्प्रदाय की अच्छी सेवा कर सकूंगा। किंतु इसके साथ ही यह भी कह दूं कि इस इच्छा के पीछे यह भी इच्छा थी कि ऐसा करके मै अपने सम्प्रदाय के अधिकारों का संरक्षक होने का दावा सरलता से कर सकूंगा।"

डा० मुकर्जी ने इस तरह कई और दिलचस्प बातों का ज़िकर किया है—किंतु उनका आशय यह है कि सम्प्रदायवादी व्यक्ति अपने सम्प्रदाय में सर्व-प्रियता प्राप्त करने के लिए सीधी सादी और अनज़ान जनता के मनोभावों से किस प्रकार खिलवाड़ कर सकता है। इन बातों से यह सिद्ध हो गया कि सचमुच कम्यूनल एवार्ड हमारे जातीय जीवन के लिए भयानक विष है जिसे

स्वीकार करके कांग्रेस ने भारी भूल की। इस ज़हरीले कीड़े की समाप्ति से ही वर्तमान कठिनाइयों का हल हो सकता है।

आज़ाद पंजाब क्या है ?

आजाद पंजाब या पंजाब की नई सीमाबन्दी की माँग 'कम्यूनल एवार्ड' से उत्पन्न सांप्रदायिक दुरवस्थाओं का परिणाम तो है ही किंतु इससे भी अधिक वह क्या है इसका पता उसके अनुयायियों के व्यक्तिगत विचारों का अध्ययन करने से भलीभाँति लग जाता है—और इस अवस्था में उसकी गहराई में उसी निराशा और साहसहीनता के भाव पाए जाते हैं जो इस समय और भी बहुतेरे हिंदुस्तानियों में पाए जाते हैं।

इस प्रकार के अनुन्नत विचार परतन्त्र जाति में उस समय उत्पन्न होते हैं जब वह यह अनुभव करती है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उसके अच्छे से अच्छे उपाय भी असफल रहे हैं। उस समय जब कि उसके अनुगामियों के मन में विवशता की स्थिति में ये विचार उठते हैं—"हमने हर संभव प्रयत्न कर देखा किंतु हम असफल रहे। हमने अपनी सम्पूर्ण शक्ति खर्च कर दी, किंतु हम अपने लक्ष्य पर न पहुँचे। अपनी योग्यता से भी बढ़-चढ़ कर उपाय किए किंतु सफल न हुए।" ऐसे विचार उत्पन्न होते ही उनके साहस की कमर टूट जाती है। उनका आत्म-विश्वास समाप्त हो जाता है। इसके विरुद्ध वह अपने शासकों की महान शक्ति में विश्वास करते हुए अपने आपको वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार बदलने की कोशिश करते हैं। इस प्रसंग में जहाँ दूसरे हिंदुस्तानियों का सम्बन्ध है, इस समय उनके विचारों की बहस में न पड़ कर 'आज़ाद पञ्जाब' के अनुयायियों की मानसिक स्थिति को समझने का यत्न करूंगा। मालूम होता है कि उनमें निराशा की भावना इन कारणों से उत्पन्न हुई है कि वे यह सोचते हैं—"एक ओर

स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आंदोलन अभी तक असफल रहा है दूसरी ओर कम्यूनल एवार्ड पर आधारित शासनद्वारा सांप्रदायिक बहुमत उनके धार्मिक अधिकारों को कुचल रहा है। ऐसी स्थिति में यह अच्छा होगा कि पहले इसी से छुटकारा पाने का कोई प्रभावशाली प्रयत्न किया जाय।"

दूसरी बात जो मुझे दिखाई देती है वह है हिंदुस्तान की साधारण राजनीतिक अवस्था या दूसरे शब्दों में पाकिस्तान का कार्यक्रम। जब कभी देश की राष्ट्रीय स्थिति ख़राब हो जाती है और विभिन्न वर्गों का एक-दूसरे पर विश्वास नहीं रहता तो उनकी ओर से जवाबी आंदोलन शुरू होना स्वाभाविक है। यद्यपि यह अवस्था हिंदुस्तान में साधारण बात हो गई है किंतु जहाँ तक अकाली सिक्खों की आज़ाद पञ्जाब की माँग का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि इस की तह में भी एक ही भावना काम कर ही है और वह है सांप्रदायिक बहुमत के विरुद्ध अविश्वास, और उसके भय-स्वरूप अपने अन्दर आत्म-विश्वास की कमी।

किन्तु जब मुसलमानों ने ९ करोड़ की संख्या में होते हुए भी बहुमत के विरुद्ध अविश्वास प्रकट किया तो ऐसे अल्पमत में जिसकी संख्या लाखों से अधिक नहीं इस प्रकार के विचारों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, विशेषकर उस अवस्था में जबकि चार प्रान्तों में उनका (मुसलमानों का) बहुमत है। किन्तु सच तो यह है कि हिन्दुस्तान में बहुमत और अल्पमत का यह झगड़ा बिलकुल निराधार और कृत्रिम है क्योंकि जब कि मुसलमान सामूहिक रूप में अल्पमत में हैं तो कुछ सूबों में उनका बहुमत भी है। दूसरी ओर हिन्दू जिनका कि हिन्दुस्तान में बहुमत है मुसलिम-बहुमत वाले प्रांतों में अल्पमत में भी हैं। और हिन्दुस्तान के इस बहुमत का बंगाल,

पंजाब, सिन्ध और सीमाप्रान्त की शासन-व्यवस्था में कोई हाथ ही नहीं; इसके विरुद्ध उनमें मुसलमानों का पूरा पूरा बहुमत पाया जाता है। जिसके द्वारा वहाँ वे आज अपनी मनमानी कर रहे हैं। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि हिन्दू राज्य के भय से भयभीत हो कर इन्ही प्रांतों में पाकिस्तान की माँग की जा रही है। यद्यपि हिन्दू बहुमत से यदि किसी को भय हो सकता है तो उन प्रांतों के मुसलमानों को जहाँ हिन्दुओं का बहुमत है। अतएव ऐसी स्थिति में पाकिस्तान की माँग, बिलकुल बेहूदा और मूर्खतापूर्ण है। इसका परिणाम इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता कि मुस्लिम बहुमत के प्रांतों के हिन्दू और सिख उन प्रांतों की नई सीमा-बन्दी की माँग करें, जैसा कि अब पंजाब के सिक्खों के एक दल और सिंध के कुछ हिन्दुओं की ओर से क्रमशः 'आज़ाद पंजाब' और सिन्धुस्थान की आवाज़ें आ रही हैं। बंगाल के हिन्दुओं में भी बंगाल के विभाजन के भाव मौजूद हैं। यद्यपि इस विषय में उन्होंने कोई नियमित आंदोलन आरम्भ नहीं किया। इन प्रांतों के हिन्दुओं और सिखों की यह माँग मुसलमानों द्वारा माँगे जाने वाले पाकिस्तान का स्वाभाविक परिणाम है। बंगाल और पंजाब में हिन्दू तथा हिन्दू-सिख मिला कर ४४ और ४० प्रतिशत हैं। किन्तु उन प्रांतों में वह इस प्रकार आबाद हैं कि अनेक इलाकों में उनका पूरा बहुमत है। ऐसी स्थिति में उन्हें आत्म-निर्माण के उस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता जिसकी माँग मुसलमान अपने लिए कर रहे हैं। सिन्ध के हिन्दुओं का यह कहना सर्वथा सत्य और ठोस दलीलों पर आधारित है कि यदि मुसलमान हिन्दुस्तान में २५ प्रतिशत होते हुए भी आत्म-निर्णय की माँग कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि सिन्ध के हिन्दू जो प्रांत में २७

प्रतिशत हैं इस अधिकार से वंचित रहें। जब आप मनुष्यों को राजनीतिक रूप से विभक्त करना शुरू कर दें, तो इस विभाजन का फैलना और जातीय-जीवन में उसका गहरा असर होना आवश्यक और स्वाभाविक है। यह अवस्था कम्यूनल एवार्ड के कारण उत्पन्न हुई और इससे भी भयानक अवस्था पाकिस्तान के कारण उपस्थित होगी। अपने विरोधियों के भय की पर्वाह न करते हुए भी आज़ाद पंजाब का वर्तमान आंदोलन क्यूनल एवार्ड के कारण कुछ-कुछ और पाकिस्तान की माँग के कारण बहुत कुछ उत्पन्न हुआ है, फिर भी अविश्वास के इस विषैले वातावरण को फैलने से रोका न गया तो हिंदुस्तान का राष्ट्रीय जीवन समाप्त हो जायगा और हमारे उस आंदोलन की समाप्ति हो जायगी, जो राष्ट्रीय उत्थान के लिए हम पिछले पचास वर्षों से कर रहे हैं।

अस्तु, आइए हम स्वतन्त्र पञ्जाब के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें और यह मालूम करें कि क्या वर्तमान परिस्थितियों में पञ्जाब की नई सिरे से सीमाबन्दी की माँग हमारी कठिनाइयों को कुछ कम करती हैं। इस प्रसङ्ग में सबसे पहले पाठकों की जानकारी के लिए नीचे वह प्रस्ताव दिया जाता है जो कि 'आज़ाद पञ्जाब' के समर्थक पेश करते हैं। यह प्रस्ताव वह है जो हाल ही में 'आल इण्डिया सिख यूथलीग' के लाहौर अधिवेशन में स्वीकृत हुआ था।

"इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कि सांप्रदायिक निर्णय 'Communal Award' पर आधारित प्रांतीय शासन पञ्जाब के हिन्दुओं और सिखों के लिए नाशकारी सिद्ध हो रहा है और चूंकि उन्हें उस समय तक सुधार की कोई आशा नहीं दिखाई देती जब तक शासन की बागडोर स्थायी मुस्लिम बहुमत के हाथ में है, और चूंकि पाकिस्तान का आंदोलन उनकी स्थिति

को और भी बिगाड़ने का यत्न कर रहा है, और चूंकि सिखों ने अपने इस निश्चय की घोषणा कर दी है कि वह अपनी सभ्यता और अपनी स्थिति पर इस आक्रमण को सहन नहीं करेंगे, इसलिए इस कांफ्रेंस की यह राय है, कि सिखों की सम्माननीय स्थिति केवल उसी अवस्था में सुरक्षित रह सकती है जब कि पञ्जाब की नई सीमा बनाकर उन ज़िलों को जिनमें मुसलमान बहुत अधिक बहुमत में हैं सीमा प्रांत से मिला दिया जाय। अतः यह कान्फ्रेंस सिख नोजवानों से आशा करती है कि वे इस माँग का समर्थन करें। यह कान्फ्रेंस यह भी माँग करती है कि जिन ज़िलों को सीमा प्रांत के साथ मिलाया जाय उनके सिख और हिंदू अल्पमतों को वही विशेषाधिकार और संरक्षण दिए जायँ जो सी० पी० और मद्रास में मुस्लिम अल्पमतों को प्राप्त हैं।

(ट्रिब्यून १ फ़रवरी १९४३)

यद्यपि यह प्रस्ताव ऊपर से देखने में तो गोलमोल, भ्रमपूर्ण और निरर्थक सा है, किंतु, यदि इसकी तह तक पहुँचने का यत्न किया जाय तो इसमें दो विचार काम करते दिखाई देते हैं—पहला यह कि साम्प्रदायिक निर्णय के कारण पञ्जाब में साम्प्रदायिक बहुमत का जो शासन स्थापित है, आज़ाद पञ्जाब के समर्थक उससे मुक्ति पाने के लिए प्रांत की इस प्रकार की सीमा-बन्दी चाहते हैं कि जिससे हिंदुओं और सिखों की स्थिति अच्छी हो सके। दूसरा विचार इस संदेह पर आधारित है कि पाकिस्तान का आंदोलन सफल हो जायगा। इसलिए खुले शब्दों में कह सकते हैं कि आज़ाद पञ्जाब की माँग करने वालों में एक ओर तो यह विचार पाया जाता है कि चूंकि युद्ध के बाद हिंदुस्तान के वर्तमान राजनीतिक दर्जे में कोई परिवर्तन नहीं होगा और सांप्रदायिक निर्णय पर आधारित वर्तमान शासन ज्यों का त्यों बना रहेगा, इसलिए हिंदुओं

और सिक्खों की स्थिति के सुधार की उस समय तक कोई आशा नहीं जब तक कि प्रांत की नई सीमा-बंदी न हो जाय, और दूसरी ओर उन्हें इस बात का भी अंदेशा है कि हिंदुस्तान स्वतन्त्र हुआ तो उसकी एकता स्थिर न रह सकेगी, वरन् पाकिस्तान अमल में आ जायगा। उनका यह भ्रम इस प्रस्ताव से स्पष्ट प्रकट होता है। सीमाबन्दी की माँग एक ओर सांप्रदायिक निर्णय और दूसरी ओर पाकिस्तान के भय के नाम पर की गई है। और ऐसा जान पड़ता है कि वह ऐसी स्थिति में रहना चाहते हैं जिससे कि इस माँग का दोनों अवस्थाओं में उपयोग किया जा सके। गोया आज़ाद पञ्जाब का उद्देश्य दुतरफ़ा है।

कम्यूनल एवार्ड और आज़ाद पंजाब

क्या हिन्दुस्तान वर्तमान अवस्थामें ही रहेगा? किन्तु जहाँ तक आज़ाद पञ्जाबका कम्यूनल एवार्ड से सम्बन्ध है इस विषय में मैं जानता हूँ कि इसकी माँग ने क्रिप्स मिशन के बाद ज़ोर पकड़ा और इस के पक्ष में उस समय आन्दोलन आरम्भ हुआ जब कि मिस्टर एमरी ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में सिक्खों को शक्तिशाली अल्पमत कहा और इस बात का संकेत किया कि प्रान्त की नई हदबन्दी से ही सिक्खों का भला होगा और मैं यह भी समझता हूँ कि स्वतन्त्र पञ्जाब की माँग हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी कूटनीति की सफलता और हिन्दुस्तानियों के राष्ट्रीय चरित्र की गिरावट का एक और प्रमाण है। किन्तु इस समय मैं इस बहस में नहीं पड़ना चाहता, क्योंकि ऐसी अवस्था में जब कि हिन्दुस्तान का प्रत्येक दल सरकार से अपनी उन्नति की आशा रखता हो तो सिक्खों के एक दल का भी ऐसा सोचना स्वाभाविक है। इस के अतिरिक्त चूंकि हिन्दुस्तान के शासन की नींव इस समय कम्यू-

नल एवार्ड है, इसलिए इस के होते हुए साम्प्रदायिक आधार पर पञ्जाब की नई सीमाबन्दीकी माँग का बुनियादी तौरपर विरोध नहीं किया जा सकता, खास कर उस अवस्था में जब कि बम्बई से सिन्ध की पृथकता के रूप में इस सिद्धांत को स्वीकार किया जा चुका है। वैसे भी प्रांत की नई सीमाबन्दी स्वयं कोई ऐसी वस्तु नहीं जिस पर अधिक तर्क किया जाय। एक तो हिन्दुस्तान के विभिन्नप्रान्तों की वर्तमान सीमाबन्दी ब्रिटिश सरकार ने अपनी सुविधा के लिये की है और जब तक वह यहाँ है उसे उस की इन कार्रवाइयों से रोका नहीं जा सकता। और इसलिये भी कि जब हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होगा तब निश्चय ही उस के कई प्रान्तों की वर्तमान सीमाओं को बदलना होगा, यद्यपि उस समय के सीमा-निर्धारण में अन्तर अवश्य होगा क्योंकि उस समय हमारी राष्ट्रीय सरकार राष्ट्रीयता के आधार पर यह कार्य करेगी। किन्तु इस प्रसंग में हमारे अकाली भाइयों का यह खयाल बिल्कुल गलत है कि यदि ब्रिटिश सरकार ने आजाद पञ्जाब की माँग को मान लिया (जिस की कोई भी आशा नहीं) तो प्रांत का विभाजन उन की इच्छा के अनुसार होगा, अथवा उसे कोई स्वतन्त्र कमीशन करेगा। किन्तु, इस तर्क में न पड़ते हुए मैं केवल इतना कहूँगा कि जहाँ तक आज़ाद पञ्जाब का सम्बन्ध कम्यूनल एवार्ड से है या जहाँतक उसका उद्देश्य केवल नया प्रांत बनाने का है, (यद्यपि बुनियादी तौर पर यह विरोध का विषय नहीं), इस सिलसिले में दो बड़े प्रश्न पैदा होते हैं—पहला यह कि क्या वह कम्यूनल एवार्ड जिस के आधार पर प्रांत के विभाजन की मांग की जा रही है क्या इसी तरह कायम रहेगा और वह उद्देश्य जिस के लिए यह माँग की जा रही है पूरा हो जायगा? अर्थात् क्या प्रांत की नई सीमा

बन्दी सम्मिलित रूप से हिन्दुओं और सिक्खों के लिए हितकर हो सकती है ?

जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है उसके विषय में यदि यह मान लिया जाय कि युद्ध के बाद सचमुच कम्यूनल एवार्ड कायम रहेगा तो इसके साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दुस्तान के वर्तमान राजनीतिक सम्बन्ध में भी कोई परिवर्तन न होगा, और इस में 'स्टेटस-को' ही क़ायम रहेगा। किन्तु मैं इस विचार को भ्रमपूर्ण और निराधार समझता हूँ और मेरा यह पूरा विश्वास है कि युद्ध का परिणाम चाहे कुछ भी हो हिन्दुस्तान वर्तमान अवस्था में कदापि नहीं रह सकता। भले ही मि० चर्चिल यह कहते रहें, "ब्रिटिश उपनिवेशों का प्रश्न ब्रिटेन का अपना प्रश्न है और इस प्रश्न से किसी और का कोई सम्बन्ध नहीं।" मगर दूसरी दुनिया मि० चर्चिल के इस विचार को स्वीकार करने को तैयार नहीं, क्योंकि यदि इस विचार को स्वीकार कर लिया जाय तो यह बात भी माननी पड़ती है कि जर्मनी और जापान के उपनिवेशों का प्रश्न भी जर्मनों और जापानियों का अपना प्रश्न है। किन्तु आप विश्वास रखें कि अब साम्राज्यवादी देशों की इज़ारेदारी (ट्रस्टीशिप) के युगकी समाप्ति समीप है। और शीघ्र ही वह समय आ रहा है जब कि यह उपनिवेश अपने भाग्य का आप निर्णय करेंगे। मुझे अमेरिका के स्व० प्रेज़ीडेण्ट विलसन के उन शब्दों में तनिक भी सन्देह नहीं जो उन्होंने पिछले युद्ध के पश्चात् वर्सेलीज़ सन्धि के विषय पर बोलते हुए कहे थे। उन्होंने कहा था, "आज से बीस वर्ष बाद एक ऐसा युद्ध होगा जो केवल युद्ध ही नहीं महाप्रलय कहलायगा। ऐसी क्रांति होगी जो विभिन्न जातियों के मध्य राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अन्यायों को समाप्त कर देगी।" और

निश्चय ही इस युद्ध का परिणाम ऐसा ही होगा। यद्यपि इस का आरम्भ साम्राज्यवाद को सुदृढ़ बनाने के लिए हुआ किन्तु इस का अन्त उस की समाप्ति पर होगा।

वर्तमान युग में पिछले डेढ़ सौ वर्ष से एक क्रांति का आरम्भ हुआ। अब इस युद्ध में पूर्ण सफलता के साथ उसकी समाप्ति निश्चित है। संसार के सामने अब कोई मध्य मार्ग नहीं। यह युद्ध अब इस समय जिस स्थिति पर पहुँच गया है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब संसार में शान्ति स्थापना का अर्थ क्रान्ति से कम नहीं। अब इस बार वर्सेलीज़ की विचित्रता दुहराई नहीं जा सकती।

वर्तमान युद्ध का उत्तरदायित्व ऊपर से देखते हुए जर्मनी, ब्रिटेन अथवा और किसी पर क्यों न हो किन्तु सचाई यह है कि इस का कारण कुछ और है और वह है मनुष्यता से गिर जाना। आज संसार में दुराचार, धोखेबाजी, कपट, अन्याय और अत्याचार का बोलबाला है। इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, किन्तु यह सब अवस्थाएँ क्रान्ति के पूर्व लक्षण हैं। क्रान्ति और विशेष कर समाजिक क्रान्ति उसी समय हुआ करती है जब जीवन की वर्तमान विषमताएँ असह्य हो जाती हैं और मानव यह देखता है कि अब उस की मुक्ति साधारण परिवर्तन से नहीं वरन् सोसाइटी के समूचे संचालन के आमूल परिवर्तन से सम्भव है; यद्यपि ऐसी अवस्था में वह व्यक्ति या वह समाज जो परिवर्तन से अपनी हानि समझते हैं वर्तमान प्रबन्ध को ही सर्वोत्तम बतलाते हैं। सर्वसाधारण जनता में से वे व्यक्ति जो भाग्यवादी, प्राचीनता-प्रिय अथवा सुलह-पसन्द होते हैं, क्रान्ति को रोकने में ही अपना कल्याण समझते हैं। किन्तु इतने पर भी सामाजिक और आर्थिक दुरवस्थाएँ उन के उन्नतिहीन विचारों

की पर्वाह नहीं करती। उन के सड़ेगले विचारों को कुचलते हुए आगे बढ़ते हैं। परिणाम यह होता है कि कुछ व्यक्ति अथवा कुछ संस्थाएँ परिवर्तित युग के साथ आगे नहीं बढ़तीं, अपने आपको नहीं बदलतीं तब क्रान्ति स्वयं उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य है।

कुछ श्रेणियों की स्वार्थी संस्थाएँ प्राचीनप्रियता के कारण क्रान्ति विरोध के लिए कमर कस कर आगे आती हैं। यह बात न केवल एक समाज के लिए सच है वरन् विभिन्न जातियों के आपसी सम्बन्धों के लिए भी। जब कोई साम्राज्यवादी देश अपनी इजारेदारी को छोड़ना नहीं चाहता और बदलती हुई अवस्थाओं में इस बात का अनुभव नहीं करता कि अब उस की इजारे दारीका युग समाप्त हो गया है तो प्राकृतिक रूप से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि अचानक उसे अपनी बपौती से हाथ धोना पड़ता है और मुझे यह विश्वास है कि वर्तमान युद्ध दोनों ही अवस्थाएँ उत्पन्न करने का कारण होगा अर्थात् जहाँ समाज का आर्थिक ढाँचा बदल जाएगा वहीं उस के साम्प्रदायिक और धार्मिक अंगों पर भी प्रभाव हुए बिना नहीं रह सकता।

विश्वास रखिये कि अब संसार के सामने उन व्यापक बेचैनियों को दबाने का कोई उपाय नहीं जो इस समय मानव की परवशता तथा सामाजिक और आर्थिक विषमता के कारण हो रही हैं। अब व्यावसायिक क्रान्ति के कारण नई श्रेणियाँ उत्पन्न हो गई हैं। एक ओर मज़दूर है दूसरी ओर मिल-मालिक, एक ओर किसान हैं दूसरी ओर उन के शोषणकर्त्ता ज़मींदार (लैण्ड लार्ड)। इस के अतिरिक्त एक तीसरा दल है जाग्रत जनसमूह है जो कि अठारवीं शताब्दी के पिछड़े हुए समूह से सर्वथा भिन्न है। यह उस पीड़ित स्त्री समाज का है जो अधिक समय तक केवल बच्चा पैदा

करने की मशीन बनी रहना नहीं चाहती और उन युवकों का है जिन्हें अपनी स्वाभाविक शक्तियों को क्रियात्मक रूप देने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। ये अपनी उचित इच्छाएँ पूरी न होते देख कर हर समय बेचैन रहते हैं। इस के सिवा अब मनुष्य समाज का कोई भी दल सामाजिक रूप से अपने आप को नीच समझने के लिए तैयार नहीं। अब उसे अपने ऊपर वालों पर अधिक विश्वास नहीं रहा। इस के विरुद्ध अब वह यह समझने लगा है कि उस के ऊपर लादी हुई यह नीचता अस्वाभाविक और अत्याचारपूर्ण थी।

इन सब बातों को देखते हुए वर्तमान युद्ध के विभिन्न पहलुओं पर मैंने जितना ही सोचा है उतना ही मुझे मि० विलसन के इन शब्दों पर विश्वास होता गया है कि बीसवीं शताब्दि का यह युद्ध एक बड़ी भारी क्रान्ति का कर्त्ता सिद्ध होगा। इस के द्वारा सामाजिक और राजनीतिक हर प्रकार की पुराणप्रियता समाप्त हो जाएगा। संसार से 'स्टेटस-को' निर्मूल हो जाएगा। संसार में इस समय जो बेचैनी बेइतमीनानी और बेज़ारी दिखाई देती है वह अब अधिक देर तक उसे गन्दे पानी का तालाब न रहने देगी।

इन सब बातों के अतिरिक्त जहाँ तक हिन्दुस्तान और ब्रिटिश राज्य के भविष्य का सम्बन्ध है, मुझे "तहज़ीब खतरे में" नामक पुस्तक के रचियता मि० अल्फ्रेड कुबान के इन शब्दों की सचाई में पूरा विश्वास है, "राजनीतिक बेचैनी अब विश्व-व्यापक महत्व की शक्ति प्राप्त कर चुकी है अब सैनिक-शक्ति का आधार आर्थिक शक्ति पर है। ये दो बातें ही नए शासन-विधान की बुनियाद बनेंगी। साम्राज्यवाद का स्वभाव यह है कि ज्योंही रिआया राजनीतिक शक्ति में हिस्सा लेने की सरगर्मी से माँग करे उसे तत्काल सन्तुष्ट किया जाय। ऐसा अनेक उपायों से किया जा

सकता है। विजित जाति शासन की छाया में रहते हुए भी स्वतंत्र रह सकती है जैसा कि मैक्सिको और मिश्र आदि देशों की स्थिति से स्पष्ट है। निःसन्देह ऐसी स्वतन्त्रता सैनिक शक्ति के बल पर ही आधारित होती है। इस के अतिरिक्त भौगोलिक रूप में साम्राज्य के विभिन्न भाग भी अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित रख सकते हैं, जैसा कि ब्रिटेन के उपनिवेशों में कनैडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका आदि में। सम्राज्य के लोगों को ज्यों ही वह आर्थिक उन्नति कर लें, शिक्षित हो जाएँ त्यों ही नागरिकता के अधिकार उन्हें दे दिए जा सकते हैं। क्या कोई यह विश्वास कर सकता है कि हिन्दुस्तान की राजनीतिक अभिलाषाओं को पूर्ण किए बिना हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रखा जा सकता है। साम्राज्य का भविष्य आज यह है कि अब उसे सैनिक शक्ति के बल पर स्थिर नहीं रखा जा सकता। उस के संगठन को स्थिर रखने का उचित उपाय यह है कि राजनीतिक बेचैनी दूर करने के लिए अधिक से अधिक बलिदान किया जाय।"

अतएव कुछ तो हिंदुस्तान की वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, और जातीय बेचैनी और कुछ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रकाश में 'फडरेलिज्म या सोशलिज्म' पुस्तक के रचयिता मि० जान स्ट्रेची के शब्दों में मैं कह सकता हूँ—कि "ब्रिटेन को या तो इस युद्ध के दिनों में ही अथवा उसके बाद होने वाले शांति-सम्मेलन में राष्ट्रीयता-प्रेमी हिन्दुस्तान से अनिवार्यतः समझौता करना पड़ेगा।" युद्ध के दिनों में तो इसे व्यक्तिगत मामला कह कर टाला जा सकता है, लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद ऐसा करना असम्भव हो जायगा। हिंदुस्तान का प्रश्न सारे संसार का प्रश्न है। जब तक हिंदुस्तान गुलाम है संसार से साम्राज्यवाद समाप्त नहीं हो

सकता। और जब तक साम्राज्यवाद मौजूद है, संसार में स्थायी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। इसलिए इस युद्ध के जीतने के बाद शान्ति जीतने के लिए मित्र राष्ट्रों को आवश्यक रूप से भारत वर्ष की समस्या सुलझानी ही होगी। और मैं तो यह विश्वास पूर्वक कह सकता हूं कि यदि मित्र राष्ट्रों की विजय हुई तो शांति कांफ्रेंस में सब से प्रमुख प्रश्न भारत की स्वतन्त्रता का होगा। जहां अमेरिका चीन और रूस ब्रिटेन को भारत वर्ष पर अपना पंजा जमाए रखने की स्वीकृत न देंगे वहां ब्रिटेन भी उनका सामना करने योग्य न होगा। इसलिए इस भ्रम में रहना कि इस युद्ध की समाप्ति पर भी हिन्दुस्तान स्वतन्त्र न होगा, ठीक नहीं। और यह विचार करना तो बिलकुल ही ग़लत है कि इसकी वर्तमान राजनीतिक अवस्था में कोई परिवर्तन न आएगा। और कम्यूनल एवार्ड पर आधारित यह शासन ज्यों का त्यों स्थिर रहेगा।

इस युद्ध के बाद हिन्दुस्तान को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो अथवा मिश्र के ढङ्ग पर अर्धस्वाधीनता मिले, उसे औपनिवेशिक स्वराज्य मिले अथवा शासन-सम्बन्धी कुछ और सुधार हों, लेकिन यह निश्चत है कि सन् १९३५ का कानून उसपर लदा नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में हिन्दुस्तान के अविश्वास पूर्ण राजनीतिक भविष्य में कम्युनल एवार्ड के आधार पर अभी से पञ्जाब के विभाजन की माँग करना और उसके लिए अभी से सङ्गठित युद्ध आरम्भ कर देना बिल्कुल बेकार, हास्यजनक तथा समय और शक्ति को नष्ट करने वाला है। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय जीवन का और पञ्जाब के हिन्दुओं और सिक्खों का हित भी इसी में है कि उसे (कम्यूनल एवार्ड को) जड़मूल से निकाल फेंका जाय। उसके रहते हुए आज़ाद पञ्जाब भी हिन्दुओं और सिखों की कठिनाइयों को सुलझा नहीं सकता। हो सकता है कि उनकी

वर्तमान अवस्था ऊपर से कुछ अच्छी दिखाई दे किन्तु होगी वह मृग-मरीचिका ही।

इस बात का संबन्ध है कि यदि दुर्भाग्यवश कम्यूनल एवार्ड क़ायम रहे तो भी क्या पंजाब का बटवारा हितकर होगा, मैं इस प्रसंग में तर्क वितर्क करना नहीं चाहता, क्योंकि मेरे आगे एक आधारभूत प्रश्न है, और वह यह है कि हिन्दुस्तान का हित इसी में है कि कम्यूनल एवार्ड और साम्प्रदायिक शासन को जैसे भी बने समाप्त किया जाय क्योंकि इसकी वर्तमानता में हमारे देश की जातीय एकता स्थिर नहीं रह सकती, जो इसकी उन्नति के लिए आवश्यक है। हिन्दुस्तान की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति उसके विभिन्न दलों की पारस्परिक एकता, मेल-मिलाप और विश्वास से ही संभव है और यह केवल उसी अवस्था में प्राप्त हो सकती है जबकि विभिन्न अल्पमत वाले अपने भीतर प्रथक्ता के स्थान पर बहुमत वालों से मेल-मिलाप की भावना उत्पन्न करते हुए उसमें प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित ऐसा राष्ट्रीय शासन स्थापित होने दें जिसमें बहुमत और अल्पमत का झगड़ा ही न रहे।

पाकिस्तान और आज़ाद पंजाब

अब रहा प्रश्न यह कि आज़ाद पंजाब का पाकिस्तान के साथ क्या संबन्ध है? अनेक क्षेत्रों में यह सोचा जाता है कि पाकिस्तान की तरह ही उसका उद्देश्य खालिस्तान स्थापित करना है। किन्तु यह विचार भ्रम से भरा हुआ है, विशेषकर उस अवस्था में जब आज़ाद पंजाब की माँग करने वाले स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि उनका सम्बन्ध केन्द्र से होगा। वे किसी प्रकार भी उससे प्रथक् होना नहीं चाहते। मेरे विचार से आज़ाद पंजाब का पाकिस्तान से

वही सम्बन्ध है जिसका वर्णन मैंने निर्दल सम्मेलन (Non party conference) के प्रसंग में पहले अध्याय में किया है। अर्थात् बंगाल और पंजाब के विभाजन के आधार पर मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर ली जाए। अथवा यह कि पाकिस्तान की स्थापना निश्चित हो जाय तो बंगाल और पंजाब के विभाजन का प्रश्न उठा कर पाकिस्तान की सीमाओं को एक ओर रावी के पार और दूसरी ओर पूर्वी बंगाल से परे रखा जाय। पाकिस्तान की स्वीकृति के बाद मुसलमानों को एक दल की हैसियत से उन सूबों में आत्म-निर्णय का अधिकार देना होगा जिन में सम्मलित रूप से हिन्दू और सिख मिलाकर ४५ प्रतिशत के लगभग हैं। यही नहीं बल्कि इनके कुछ भागों में उन्हें बहुमत प्राप्त है। ऐसी अवस्था में यदि मुसलमानों को एक दल की हैसियत से आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जा सकता है तो निश्चय ही उन्हें इस बात की आज्ञा नहीं दी जा सकती कि वह केवल कुछ अधिक संख्या में होने के कारण ४५ प्रतिशत गैर मुस्लिम जनसंख्या के भाग्य का भी निर्णय करें। इस अवस्था में तो उन्हें हिन्दुओं और सिक्खों को भी आत्म-निर्णय के वही अधिकार देने होंगे जो वह अपने लिए चाहते हैं। उस समय मि० जिन्ना यह कह कर अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते कि पंजाब के सिक्ख उपजातीय दल (Sub Nation group) है। वरन् उन्हें वश अथवा बेवश होकर बंगाल अथवा पंजाब के सिक्खों को वह अधिकार देने ही होंगे। अतएव मैं समझता हूँ कि यद्यपि आज़ाद पंजाब के समर्थक स्पष्ट रूप से यह नहीं बतलाते कि पाकिस्तान के आंदोलन के नाम पर पंजाब के विभाजन की माँग उपस्थित करने से उनका असली उद्देश्य क्या है? किन्तु मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि उनकी इस माँग की तह में यही विचार काम कर रहा है। किन्तु बङ्गाल और पञ्जाब के

विभाजन की मांग केवल उसी अवस्था में की जा सकती है जब कि पहले पाकिस्तान को स्वीकार कर लिया जाय। क्योंकि यह माँग अपने आप में पाकिस्तान को स्वीकार कर लेने के बराबर ही है और उसके बाद पाकिस्तान का विरोध व्यर्थ हो जाता है। यही कारण है कि यद्यपि बङ्गाल के हिन्दू भी इस नुक्ते को समझते हैं और पाकिस्तान को स्वीकृति के समय उनकी ओर से भी बङ्गाल के विभाजन का प्रश्न उठाया जायगा, किन्तु वे अभी तक मौन हैं, क्योंकि वह समझते हैं कि पाकिस्तान के निर्णय का अभी अंतिम समय नहीं आया है। अभी तो हिन्दुस्तान में सार्वजनिक रूप से राष्ट्रीयता विघातक मुस्लिम लीग की इस माँग के आगे सिर झुकाने वाली हरैली मनोवृति उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उसका विरोध बराबर दृढ़ता से जारी है। अतएव ऐसी अवस्था में पाकिस्तान की माँग से भयभीत होकर पञ्जाब के विभाजन की माँग करने लगना पाकिस्तान को स्वयं स्वीकार कर लेना है। यह ठीक है कि आज़ाद पञ्जाब की माँग पाकिस्तान को कमज़ोर कर देगी अथवा दूसरे शब्दों में उसे लघु विपत्ति बना देती है। लेकिन इसके साथ चूंकि यह भी सांप्रदायिक बहुमत के विरुद्ध अविश्वास के आधार पर स्थिति है इस लिए पाकिस्तान का महत्व देते हुए इस को 'आवश्यक विपत्ति' भी बना देता है।

इस प्रसंग में आज़ाद पञ्जाब के अनेक समर्थकों की ओर से कहा जाता है कि चूंकि ब्रिटिश सरकार क्रिप्स योजना के द्वारा पाकिस्तान को पूर्ण रीति से स्वीकार कर चुकी है, कांग्रेस ने भी बम्बई प्रस्ताव में प्रांतों को केन्द्र से पृथकता का अधिकार देकर अकारण ही मुसलमानों का आत्म-निर्णय का अधिकार स्वीकार कर लिया है, निर्दल सम्मेलन के नेता भी उसे (पाकिस्तान को)

संशोधित रूप में बङ्गाल और पञ्जाब के विभाजन के आधार स्वीकार करने को तैयार हैं। मि० राजगोपालाचार्य और कम्यूनिस्ट पर ग्रुप भी उसके पक्ष में हैं, तो ऐसी अवस्था में उनके आगे पंजाब के विभाजन की माँग के अतिरिक्त और उपाय ही एक है और उनकी इस माँग का आशय पाकिस्तान को पहले से ही स्वीकार कर लेना नहीं, बल्कि प्रांत के हिन्दुओं और सिक्खों के भविष्य को सुरक्षित करने (safeguard) का है। किन्तु जहाँ तक उपरोक्त पार्टियों और लोगों की पोशीज़न का सम्बन्ध है, यह कोई महत्व नहीं रखता। इस लिए असली सवाल ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस का है, हिन्दू सभा के रवैया का भी है। किन्तु वह प्रस्तुत विषय से भिन्न हैं क्योंकि कमसे कम वह अभी तक किसी अवस्था में भी पाकिस्तान से समझौता करने को तैयार नहीं। यदि ऐसा होता तो वहुत संभव था कि इलाहाबाद की कांफ्रेंस का वह फार्मूला—जिसे पञ्जाब और बङ्गाल के विभाजन के आधार पर बनाया गया था स्वीकार कर लिया जाता इसलिए आइए अब हम यह देखें कि इस प्रसंग में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार की क्या पोज़ीशन है। सबसे पहले कांग्रेस को लीजिए।

इस सिलसिले में आज़ाद पञ्जाब की माँग करने वाले कुछ सिख क्षेत्रों में जो अंदेशा जाहिर किया जाता है वह किसी तरह से भी ठीक नहीं है। संभव है मि० राजगोपालाचार्य की लगातार कोशिशों के कारण कांग्रेसी नेताओं में कुछ दुर्बलता और गिरावट उत्पन्न हो गई हो किन्तु जब तक कांग्रेस अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं करती. तबतक यह कहना ठीक नहीं कि कांग्रेस पाकिस्तान के पक्ष में है। इसपर यह कहा जायगा कि कांग्रेस तो अपने बम्बई प्रस्ताव में मुसलमानों के आत्म-निर्णय का प्रस्ताव स्वीकार

कर लिया है, यद्यपि बम्बई प्रस्ताव के मुकाबले में इलाहाबाद का प्रस्ताव भी मौजूद है। किन्तु इतने पर भी बम्बई प्रस्ताव के संबन्ध में यह सोचना कि उसमें पाकिस्तान का सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया है बिलकुल ग़लत है। इस प्रस्ताव में जो कुछ कहा गया है वह यह है—

"यद्यपि कांग्रेस केन्द्र में सुदृढ़ फेडरल गवर्नमेंट चाहती है किन्तु यदि कोई युनिट (प्रांत) उस से अलग रहने की हठ करे तो वह उसे बाध्य नहीं करेगी।"

यद्यपि कांग्रेस ने अपने इस प्रस्ताव में कुछ दुर्बलता दिखलाई है किन्तु इस का यह तात्पर्य नहीं कि इस के द्वारा वह पाकिस्तान को स्वीकार कर चुकी है। पाकिस्तान को स्वीकार करने का अर्थ मुसलमानों को खुले शब्दों में आत्म-निर्णय का अधिकार देने का है। किन्तु इस प्रस्ताव में ऐसा कहीं नहीं कहा गया। इस का यदि कोई मतलब है तो वह इतना ही है कि केन्द्र से पृथकता का अधिकार सम्मिलित रूप से किसी प्रान्त विशेष का होगा, उस के किसी विशेष दल या सम्प्रदाय को नहीं। जहाँ तक हिन्दू बहु-मत के प्रान्तों का प्रश्न है केन्द्र से उन की पृथकता का कोई कारण ही नहीं।

रह गया प्रश्न मुस्लिम बहुमत के प्रान्तों का। उन में यदि यह प्रश्न उठा और उस प्रस्ताव के अनुसार पृथकता का निर्णय करने के लिए मतगणना अथवा उसी प्रकार की कोई और युक्ति काम में लाई गई तो उस के द्वारा हिन्दुओं को भी अपना मत देने का वैसा ही अधिकार होगा जैसा कि मुसलमानों का। यह सही है कि चूंकि बंगाल, पञ्जाब, सिन्ध और सीमाप्रांत में मुसलमानों का बहुमत है इसलिए इस बात की संभावना होगी कि कहीं बहुमत के

द्वारा पृथकता के पक्ष में निर्णय न हो जाय। लेकिन इस विषय में यह कहना कठिन है कि बहुमत का आधार क्या होगा? क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि उस का आशय एक वोट की अधिकता हो, वरन इस के लिए कोई विशेष आधार नियत करना आवश्यक होगा और इस अवस्था में बंगाल में कुछ अधिक और पञ्जाब में कुछ कम संभावना इस बात की है कि बहुमत पृथकता के पक्ष में न होगा। अतएव इस प्रस्ताव की गहराई में न जाता हुआ मैं यह अवश्य कहूँगा कि इस में किसी प्रकार से भी पाकिस्तान को स्वीकार नहीं किया गया है। यदि ऐसा होता तो मुस्लिम लीग और कांग्रेस के मध्य कभी का समझौता हो चुका होता। इस के अतिरिक्त जब तक हरिजन में महात्मा गांधी के लेख के ये शब्द मौजूद हैं, "यदि मि० जिन्ना कहते हैं कि पाकिस्तान उन का लक्ष्य है तो मैं भी उन्हें बतला दूँ कि अखण्ड हिन्दुस्तान मेरा लक्ष्य है" हमें यह आशा नहीं करनी चाहिये कि कांग्रेस स्पष्टरूप से पाकिस्तान को स्वीकार करने का साहस करेगी। किन्तु यदि उस ने ऐसा किया तो विश्वास रखिये कि उस समय वर्तमान कांग्रेस समाप्त हो जायगी।

पाकिस्तान के आधार पर आज़ाद पञ्जाब की मांग करने वालों का यह अन्देशा भी ठीक नहीं कि क्रिप्स मिशन के द्वारा ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान को अन्तिम रूप में स्वीकार कर चुकी है। जैसा कि मैंने पहले कहा था क्रिप्स योजना में पाकिस्तान के कीटाणु मिलाने का सब से बड़ा मतलब यह था कि हिन्दू उसे ठुकरा दें और ब्रिटिश सरकार को युद्ध काल में कुछ देना न पड़े। इसके अतिरिक्त उस का दूसरा मतलब यह भी था कि ऐसी अवस्था में जब कि पाकिस्तान की मांग ग़लत या सही

तौर पर ज़ोर पकड़ रही है, युद्ध के दिनों में मुसलमानों या मुस्लिम लीग की नाराज़गी मोल न ली जाय।

लड़ाई तक अपनी आम हिन्दू विरोधी नीति के द्वारा कांग्रेस को छोड़ कर वह बाकी हरएक दल को प्रसन्न रखना चाहती है। यही कारण है कि कभी अखण्ड हिन्दुस्तान पर ज़ोर दिया जाता है और कभी पाकिस्तान का राग अलापा जाता है और कभी यह कहा जाता है कि सिक्ख एक शक्तिशाली अल्पमत हैं। इन घोषणाओं का महत्व जंगी सरगर्मियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इन के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटिश सरकार ने पाकिस्तान के पक्ष में अपनी नीति का निर्णय कर लिया है। यदि क्रिप्स योजना इस प्रसंग में एक ओर है तो वायसराय का कलकत्ते का भाषण दूसरी ओर, और ड्यूक आफ़ ग्लोसेस्टर का वह बयान भी हमारे सामने है जो उन्होंने पिछले दिनों भारत भ्रमण करते हुए दिया था। इस बयान में उन्होंने कहा "हिन्दुस्तान का दौरा करते हुए पहली बात जिस ने मुझे प्रभावित किया यह है कि हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जिसे प्रकृति ने एक बनाया है। इस के विभाजन में इस की कमज़ोरी है, इस की महानता इस की अखण्डता में है। संयुक्त रहने से यह एक बहुत बड़ी शक्ति बन सकता है। इस विस्तृत देश में भाषा, परम्परा और रहन-सहन की विभिन्नताएँ हो सकती हैं, फिर भी इस का संयुक्त रहना आवश्यक है और मुझे ऐसा मालूम होता है कि यहां उन रुकावटों को दूर करने का आन्दोलन शुरू हो चुका है जो इस की एकता के मार्ग में बाधक हैं और हिन्दुस्तान की आधारभूत एकता पर ज़ोर दिया जा रहा है।

वायसराय और ड्यूक आफ़ ग्लोसेस्टर के अतिरिक्त भी हमारे पास कई वर्ष पहले की एक और गवाही मौजूद है इस के द्वारा

हिन्दुस्तान की एकता, उस की जातीयता और पाकिस्तानी मनोवृत्ति के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण का पूरा पता चल जाता है। यह गवाही ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्व० मि० रैमज़े मैकडानलएड की है, जो डा० राधाकृष्णा मुकर्जी की पुस्तक "हिन्दुस्तान की बुनियादी एकता" की भूमिका में लिखते हैं, "हिन्दुस्तान और हिन्दुत्व का सम्बन्ध परस्पर इस प्रकार है जैसा शरीर का आत्मा से होता है। यदि हिन्दुस्तान केवल भौगोलिक नाम है और यदि उस में विभिन्न जातियों, विभिन्न रीति-रिवाज़ों और विभिन्न भाषाओं के लोग आबाद हैं और उन में राष्ट्रीयता की कोई संयुक्त भावना नहीं तो हिन्दुस्तान के इतिहास के सम्बन्ध में यह नहीं, कहा जा सकता कि वह सभ्यता की चरम सीमा का रेकार्ड है। ऐसी अवस्था में तो यह कहना उचित होगा कि यह इतिहास आक्रमणों, युद्धों और विजित विजेताओं के पारस्परिक झगड़ों का ही इतिहास है, किन्तु सचाई इस के विरुद्ध है लंका से लेकर अफ़गानिस्तान तक जिन में इस समय ब्रिटेन से आए हुए गवर्नर हैं वे इस विचार से सहमत नहीं और यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुस्तान के बारे में इस कृत्रिम विचार से आम लोग सहमत हैं। "इन प्रमाणों के होते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान के विभाजन का फैसला कर चुका है। ऐसी अवस्था में न कांग्रेस का रवैया और न ब्रिटिश गवर्नमेंट की नीति पाकिस्तान के सम्बन्ध में अपने अन्दर कमज़ोरी लाने की है। खास कर सिक्ख नेताओं की उन घोषणाओं की मौजूदगी में कहा जाता था कि भले ही कांग्रेस, हिन्दू महा सभा या दूसरी और कोई भी सभा पाकिस्तान को स्वीकार करले—सिख इसे किसी सूरत में मंजूर नहीं करेंगे। पाकिस्तान से सब से ज्यादा हानि सिक्खों को है, इसलिए सिक्खों को चाहिये कि वह न सिर्फ

अपने अन्दर बल्कि दूसरों में भी हार मानने की भावनाओं को उत्पन्न होने से रोके, ताकि मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की जो योजना बना रखी है उस का सम्मिलित विरोध हो। या तो वह इसे वापस लेने पर मजबूर हो जाय या ऐसी हालत पैदा हो जाय जिन से देश को यह कृत्रिम रूप बनना नामुमकिन हो जाय। दुनिया में कोई भी मनुष्य या जाति उस समय तक अपने ध्येय में विफल नहीं होती जब तक वह स्वयं ही हार स्वीकार न कर ले। मैं आज़ाद पञ्जाब की माँग करने वाले सिख भाइयों से अपील करूँगा कि अगर वे पाकिस्तान के अन्देशे की बिना पर ऐसा कर रहे हैं तो वह इसे कम से कम उस समय तक वापस ले लें जब तक पाकिस्तान के सारे विरोधी विचारवाले अपनी हार स्वीकार नहीं कर लेते। पाकिस्तान हिन्दुस्तान की उन्नति के लिए हानिकर है और अन्त समय तक इस का विरोध जारी रहना चाहिए। हिन्दुस्तान का भला अखण्ड रहते हुए राष्ट्रीयता के आधार पर प्रजातन्त्रवाद में ही है, और हमारी कोशिशें इस के प्राप्त करने के लिए ही होनी चाहिए।

क्या समझौता हो भी सकता है ?

मगर इस अध्याय को समाप्त करने से पहले मैं उन लोगों से जो बंगाल और पञ्जाब के विभाजन के आधार पर पाकिस्तान के बारे में समझौता करने का इरादा रखते हैं—यह पूछूंगा कि क्या वह समझते हैं कि यह सम्भव हो सकता है ? पाकिस्तान की योजना ऐसी बेहूदा खतरनाक और अव्यावहारिक है कि इस के सम्बन्ध में कोई समझौता मुमकिन नहीं। समझौते के सम्बन्ध में सब से पहिले यह सवाल पैदा होगा कि क्या पाकिस्तान के उत्तर पूर्व व उत्तर पश्चिम हिस्सों के मध्य सम्बन्ध पैदा

करने के अभिप्राय से १२०० मील लम्बा वह कारीडर (मध्य भाग) देना स्वीकार कर लिया जायगा, जिस की माँग अब मुस्लिम लीग की तरफ़ से की जाती है, याद रखो—नाज़ियों ने भी पोलैण्ड से डांज़िग तक जाने के लिये इसी प्रकार के कारीडरों की ही माँग की थी। और इसी कारण वर्तमान भयंकर युद्ध शुरू हुआ था।

समझौते की राह में दूसरी रुकावट रियासतों की है। और मेरा विचार है कि यदि पाकिस्तान के सम्बन्ध में समझौते की आशा हुई तो सब से ज्यादा विरोध रियासतों की ओर से होगा। खासकर उन रियासतों की ओर से जिनकी ज्यादा आबादी हिन्दू है, और नवाब मुसलमान। या जिन की ज्यादा आबादीमुसलमान है और राजा हिन्दू, जैसे हैदराबाद, भोपाल, काश्मीर, और कपूर्थला आदि। हिन्दुस्तान को 'हिन्दू स्थान' और पाकिस्तान में विभाजित करने की सूरत में प्रथम तो तमाम रियासतें अपनी अलग फेडरेशन बनाने की मांग करेंगी या हिन्दुस्थान या पाकिस्तान की फेडरेशन से अलग रहने की। क्योंकि इन फेडरेशनों की शासन व्यवस्था क्रमशः हिन्दुओं और मुसल्मानों के शास्त्रों के अनुसार होने के कारण इनमें किसी अवस्था में भी सम्मिलित होना वे स्वीकार न करेंगे। ऐसी अवस्था में यदि रियासतों ने अलग फेडरेशन बना लिया तो फिर हिन्दुस्तान में दो नहीं वरन् तीन फेडरेशन बनेंगे, (बशर्ते कि अछूतों और दक्षिण के द्रविड़ों ने अछूतस्थान और द्रविड़िस्तान की माँग न की, जिस का कि पाकिस्तान को स्वीकार किये जाने की अवस्था में किया जाना स्वाभाविक है, विशेष कर उस अवस्था में, जब कि अब भी कभी कभी उनकी ओर से ऐसी आवाज सुनाई देती है।) और यदि रियासतें अलग रहीं, और उनके शासकों की वर्तमान स्वेच्छाचारिता ज्यों की त्यों कायम

नहीं, तो रियासती प्रजा को वह प्रजातंत्र शासन प्राप्त न होगा जिसके लिये वह आन्दोलन कर रहे हैं।

शायद पाकिस्तान के सम्बन्ध में समझौते का विचार रखने वालों ने उसके विभिन्न अंगों पर भली भाँति विचार नहीं किया। उसका यथार्थ उद्देश्य हिन्दुस्तानी मुसलमानों के लिये केवल आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त करना ही नहीं, वरन् आल इण्डिया मुस्लिम लीग की वर्किङ्ग कमेटी के प्रमुख सदस्य चौधरी खलीकुज्जमा के कथनानुसार "पाकिस्तान केवल एक सीढ़ी अर्थात् पान इस्लामिज़्म की ओर पहला पग है।" वह इसलामी थ्योक्रेसी (मज़हबी किताबों, के आधार पर स्थित शासन-व्यवस्था) को पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं, जिसे तुर्की में मुस्तफ़ा कमाल पाशा ने समाप्त किया, और जो मिश्र और ईरान आदि इसलामी देशों में भी समाप्त हो चुकी है। पाकिस्तान की माँग की तह में 'दारुलइस्लाम' और 'दारुलअरब' के कीटाणु पाये जाते हैं, और यदि उसे स्वीकार कर लिया गया तो इसका आशय संसार में मरी हुई थ्योक्रेसी को फिर से जिलाना होगा, इस लिये मेरा विश्वास है कि यदि युद्ध के उपरान्त होने वाले 'शान्ति-सम्मेलन' में हिन्दुस्तान का प्रश्न विवाद के रूप में आया, और उसमें मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों ने पाकिस्तान का प्रश्न उठाया तो हिन्दू, अथवा हिन्दुस्तान के सच्चे राष्ट्रीय प्रतिनिधि उनका विरोध तो करेंगे ही किन्तु विदेशी प्रतिनिधि भी विशेष कर उन देशों के, जिनमें मुसलमानों की पर्याप्त जन-संख्या है जैसे कि रूस चीन आदि भी उस का विरोध करेंगे। अमेरिका भी उन्हीं में होगा, क्योंकि वह स्वयम अपनी अवस्थाओं के अनुसार एक दूसरे प्रकार के पाकिस्तान को गृह-युद्ध के मोल-अस्वीकार कर चुका है।

ऐसी अवस्था में राष्ट्र-हितैषी हिन्दुस्तानियों से सामान्यतः और पाकिस्तान के सम्बन्ध में पराजित मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों से विशेषतः यह निवेदन करूँगा कि आप हिन्दुस्तान के लिये ऐसी सत्यानाश कारी योजना के संबंध में अपने रवैये में कोई परिवर्तन न करें। हम हिन्दुस्तान को एक सुमनोहर उद्यान देखना चाहते हैं, किन्तु आप विश्वास रखिये कि पाकिस्तान उसे रेगिस्तान बना देगा। वह हमारी पारस्परिक उन्नति की नहीं वरन् युद्ध की आयोजना है। वह हमें जीवन की ओर नहीं बल्कि मृत्यु की ओर ले जाता है। यह हमारे भीतर पारस्परिक विश्वास और सहयोग की भावना करने के बदले अविश्वास और घृणा उत्पन्न करता है। इस समय हम सब का लक्ष्य शान्ति और समुन्नति प्राप्त करना है। और उसे प्राप्त करने के लिये हमें उस प्रत्येक योजना को, जो हमारे देश के लिये नाशकारी है, घृणा से ठुकराते हुए अपने अन्दर मातृभूमि के लिये प्रेम, और देशभाइयों के लिये विश्वास की भावनाएँ बढ़ानी चाहिये। और अपने सम्मिलित उद्योग द्वारा अपने देश को दुनिया की दृष्टि में अधिक से अधिक ऊँचा उठाने का यत्न करना चाहिये। यद्यपि कुछ धार्मिक विश्वासों के आधार पर, और कुछ अन्य साधारण बातों में हम में मतभेद है लेकिन राष्ट्रीय और जातीय दृष्टिकोण से हमारे भीतर मित्रता का सम्बन्ध इतना गम्भीर हो सकता है जिस से वे मतभेद भय के भूत की तरह अपने आप समाप्त हो जाएँगे। हम हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई होने के साथ ही साथ हिन्दुस्तानी हैं और यदि हम इस बात का अनुभव कर लें कि हम पहले हिन्दुस्तानी और पीछे कुछ और हैं, तो हमारा बेड़ा पार है। इन विचारों पर चल कर ही दूसरे देशों ने उन्नति की है और इन में सुदृढ़ होकर हम भी उन्नत हो सकते हैं। हम हिन्दुस्तान में क्रान्ति लाना चाहते हैं और उस

के लिये हमें क्रान्तिकारी भावनाएँ उत्पन्न करनी होंगी, साथ ही पुरानेपन की केंचुली पूर्ण रीति से उतार फेंकनी होगी। निस्सन्देह हमारे पूर्व पुरुषों ने अपने समय और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपनी समस्याओं को सर्वोत्तम रूप से सुलझाया था। आइए हम अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें अपने ढंग पर सुलझाएँ।

संसार की कोई भी वस्तु अपरिवर्तनशील नहीं है। विकाश और परिवर्तन प्रकृति के विषय हैं। प्रगति और परिवर्तन सब के लिए आवश्यक है। बहता हुआ पानी निर्मल रहता है। यदि उस का प्रवाह बन्द कर दिया जाय तो उस में मलिनता आ जाती है। मनुष्य जाति के जीवन में भी यही नियम काम कर रहा है। हम चाहें चाहे न चाहें हमें समय के साथ चलते हुए परिवर्तन और विकास के नियमों को मानना पड़ता है। अपने आपको उन नियमों के अनुसार बदलना पड़ता है। किन्तु संसार में कुछ ऐसे लोग होते हैं जो कहते हैं दुनिया बदलती ही नहीं—इसीलिए वह अपनी प्रगति और परिवर्तनों को बलात रोकने का प्रयत्न करते हैं। परिणाम यह होता है कि संसार उन्हें छोड़ कर आगे बढ़ जाता है। दुनियां में अक्सर विस्फोट होते हैं और क्रान्तियाँ आती हैं। हमारे देश के इर्द-गिर्द भी क्रान्ति हो रही है। हमारे देश में भी होनी चाहिए। किन्तु हम अपने आप को उन विस्फोटों और क्रान्ति के प्रभावों से अलग रख रहे हैं। परिणाम स्पष्ट है। या तो हम इस प्रगति में पीछे रह जायँगे अथवा यह क्रान्ति स्वयं हमें वहाँ ले जायगी जहाँ जाने की आवश्यकता है।

दुर्भाग्य से हमारे देश को नीमहकीम लीडर मिले हैं जो उनकी जान के लिये भी खतरए जान हो रहे हैं। सच पूछा जाय तो ये हमारे असली लीडर नहीं बल्कि सर्व साधारण भोली-भाली

जनता को चराने वाले चरवाहे हैं जो जनता का मत-परिवर्तन नहीं करते बल्कि उस के पीछे चलते हैं ताकि उन की लीडरी कायम रहे। इन्हें जनता की भलाई का उतना ख़याल नहीं रहता जितना कि अपनी लीडरी का। मुझे रूस के निर्वासित नेता और सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी स्व० ट्राटस्की के वे शब्द सदा याद रहते हैं जो उन्होंने एक भेंट के अवसर पर हिंदुस्तान के लीडरों के सम्बन्ध में कहे थे—"हिंदुस्तान के अधिकांश लीडर समय से पीछे रहते हैं। उनके रहते हुए मुझे हिंदुस्तान की उन्नति की कोई आशा नहीं दिखाई देती।" विचारों में मतभेद होते हुए भी ट्राटस्की के इन शब्दों में मुझे सचाई ज्ञात होती है।

हिंदुस्तान प्रजातन्त्र के योग्य हो या नहीं लेकिन ये नीम हकीम लीडर मध्य काल के स्मारक होने के कारण अजायब घर में रखने योग्य ज़रूर हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो एक ओर तो हिंदुओं को जात-पात के विषय में ताना देते हैं, किंतु दूसरी ओर नई जात-पात के निर्माण में लगे हुए हैं। और इस प्रकार देश की राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र की प्रगति में बाधक बनकर उसे दलबन्दी और क्रूसेड की अवस्था से राष्ट्रीयता की ओर आने से रोक रहे हैं। ये लोग चाहे वे कोई भी क्यों न हों, हिंदुस्तान की उन्नति के शत्रु हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि हिंदुस्तान राष्ट्रीय, सामाजिक और आर्थिक रूप में एक है और निश्चय ही आगे भी रहेगा। उसकी भलाई एक जातीयता के विकास में है, पाकिस्तान और आज़ाद पञ्जाब में नहीं क्योंकि इनके द्वारा देश की राजनीति में वही दुर्वस्था उत्पन्न हो जायगी जो कि क्यूनलएवार्ड के कारण हुई है। इनपर ज़ोर देने से ये कार्यरूप में आवेंगे या नहीं, लेकिन हिंदुस्तान की गुलामी के दिन

ज़रूर बढ़ते जायँगे, जैसा कि हालही की घटना से स्पष्ट है, जब ब्रिटेन में हिंदुस्तान को अधिकार देने के कुछ आसार नजर आए तो इन फिरक़ापरस्तों ने अपने फिरकों के लिए उचित भाग मिलने की चिल-पों मचाई। परिणाम वही निकला जो हो सकता था। हिंदुस्तानियों के लिए निराशा और ब्रिटेन के साम्राज्यवादियों के लिए आशा। यह स्थिति तब तक जारी रहेगी जब तक हिंदुस्तान पूर्ण रूप से राष्ट्रीयता को नहीं अपनाता। इसकी सारी समस्याओं का हल राष्ट्रीयता की उन्नति में है।

पाँचवाँ अध्याय

अखंड हिन्दुस्तान और उसकी समस्याओं का हल

संसार की चार क्रान्तियां

"The only hope of political Solution lies in the growth of a same ratioinalism and in the modernisation of the material aspect of life." (Indias Great Sons)

अब आप पूछेंगे कि आखिर हिन्दुस्तान की समस्याओं का हल क्या है, किन्तु कठिनाई ये है कि यह समस्याएँ एक नहीं अनेक हैं। एक ओर भूख और निर्धनता है, दूसरी ओर अज्ञान और अशिक्षा, तीसरी ओर राजनीतिक दासता और इससे उत्पन्न राष्ट्रीय चरित्र-हीनता। इन सबके अतिरिक्त इस समय जो सबसे बड़ी समस्या हमारे सामने है वह है हिन्दुस्तान की एकता और उसकी महानता को सुरक्षित रखने की। हमें इन सभी समस्याओं को सुलझाना है और यह तभी सुलझ सकती हैं जब कि भय और निराशा के विचार छोड़कर हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ें। किसी भी व्यक्ति और किसी भी जाति की महानता इसी में है कि भारी से भारी और अधिक से अधिक कठिनाइयों के बीच भी वह अपने मार्ग का निश्चय कर सकें और हर प्रकार के विरोध को परास्त करते हुए अपने ध्येय पर पहुँच सके।

किन्तु हाँ, इतना कह देना आवश्यक है कि अब पराजित मनो-

वृत्तियों का वह अध्याय समाप्त हो जाना चाहिए जो कि सांप्रदायिक संरक्षणों से शुरू होकर कम्यूनल एवार्ड के "कोरे चेक" पर होता हुआ पाकिस्तान पर पहुँचता है। अब मि० राजगोपालाचार्य और उनके सदृश विचार रखने वालों को यह समझ लेना चाहिए कि जहाँ काँग्रेस के पुराने नेताओं के अतिरिक्त महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल, मि० सुभाष बोस और अब डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी असफल हुए हैं, वहाँ उनकी सफलता की क्या आशा हो सकती है। संसार में सब को प्रसन्न करने की पालिसी न कभी सफल हुई है और न कभी होगी। आप अपनी अच्छी से अच्छी इच्छाएँ रखते हुए भी मिट्टी और पत्थर का खाद्य पदार्थों में परिवर्तन नहीं कर सकते, चाहे उन्हें कितना ही पकाने की कोशिश करें। डिक्टेटरों का यह स्वभाव है कि वह अपने लिए अधिक से अधिक उन्नता चाहते हैं और दूसरों को अधिक से अधिक पददलित करते हैं। वर्तमान युद्ध से पहिले की परिस्थितियों का यही सारांश है, जब कि शांति और सुव्यवस्था को खरीदने के भ्रम में योरुप के विभिन्न देशों के सम्राट और महामन्त्री एक के बाद एक जर्मन डिक्टेटर हर हिटलर के दरबार में हाज़िर हुए। ठीक यही नाटक हिन्दुस्तान में हुआ जैसा कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य होनेवाली बात-चीत और भेंट मुलाकातों से होता है। योरोप की इन घटनाओं का 'लंडन टाइम्स' के संवाददाता सर डगलस रीड ने 'बहुत बड़ी विपत्ति' नाम की एक पुस्तक में वर्णन किया है और यही सब कुछ कांग्रेसी नेताओं और मुस्लिम लीग के "फ्युहरर" मि० जिन्ना के मध्य होने वाली बात-चीत और भेंट मुलाकातों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है।

राजा जी को यह भी ख्याल रखना चाहिए कि यदि हिन्दुस्तान

ने इस समय पाकिस्तान स्वीकार करके आयर्लैंण्ड और उसके अलस्टर की अवस्था उत्पन्न कर ली जिसकी भविष्य-वाणी पार्लमेंट के मेम्बर ने की है तो यह केवल अल्पकालीन शान्ति मोल लेने के समान होगा। निश्चय ही हिन्दुस्तान को बल्कान बनाने का वही परिणाम होगा जो योरोप में हो रहा है। इसलिए हमें कहना पड़ता है कि कांग्रेस के माननीय नेता अपनी पुरानी 'शार्टकट' पालिसी छोड़कर विशुद्ध राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों को अपनाने में अग्रसर हों। क्योंकि देश की दासता से मुक्ति इन्हीं उपायों द्वारा सम्भव है। एकता मोल नहीं मिलती बल्कि उत्पन्न की जाती है और उसका तरीका वह नहीं जिसे कांग्रेस अब तक काम में लाती रही है, बल्कि यह है कि हिन्दुस्तानियों में दृढ़ता पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाने की आदत उत्पन्न की जाय और वह अपने जीवन को वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार बदलना सीखे। पराजित मनोवृत्ति के बदले साहस के साथ उन उपायों को अपनाना जिनसे अन्य देश आगे बढ़े और बढ़ रहे हैं हमारे लिए सबसे अच्छा उपाय है। वे मतभेद जो आज हम में दिखाई देते हैं औरों में भी थे किन्तु वह अपना निश्चित मार्ग छोड़कर मतभेदों की समस्याओं को सुलझाने में नहीं उलझे, अपने ध्येय की ओर निरन्तर बढ़ते चले गए।

संसार के वर्तमान इतिहास में चार बड़ी क्रान्तियों ने अपना प्रभाव डाला। सबसे पहले सत्रहवीं शताब्दी में इङ्गलैण्ड में व्यावसायिक क्रान्ति हुई जिसका प्रभाव सारे संसार में पड़ा—इसी के कारण एक ओर वर्तमान राष्ट्रीयता और दूसरी ओर साम्राज्यवाद का युग आया। दूसरी क्रान्ति अमेरिका में हुई जिसका कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद के द्वारा उसके उपनिवेशों की आर्थिक लूट खसोट था। उसकी इस साम्राज्यवादी नीति के कारण अमेरिका में

उसके विरुद्ध बगावत करने के विचार उत्पन्न हुए और अन्त में वह (अमेरिका) उसके पंजे से छुटकारा पाने में समर्थ हुआ जिसके परिणाम स्वरूप वहाँ (अमेरिका में) व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आधार पर प्रजातंत्र शासन की स्थापना हुई। तीसरी क्रांति फ्रांस में हुई और वहाँ भी जागृत जनता को साम्राज्यवाद के विरुद्ध लोहा लेना पड़ा। अन्त में वहाँ भी उसकी समाप्ति हुई और जनता के द्वारा संचालित शासन-व्यवस्था स्थापित हुई। इन क्रान्तियों से पहले जहाँ फ्राँस का शासन बाइबिल के नियमों के अनुसार होता था वहाँ अब उसी बाइबिल पर आक्रमण किये गए और उस दृष्टिकोण में बुनियादी परिवर्तन हो गया। परमात्मा और सर्वशक्तिमान सत्ता को पीछे पटक कर अन्ध विश्वासों को समाप्त कर दिया गया। मानव के जीवन में पग-पग पर ईश्वरी आज्ञाओं का शासन समाप्त कर दिया गया। कहा गया कि राज्य की रूपरेखा परमात्मा की ओर से पहले ही निश्चित होकर नहीं आती बल्कि क्रमशः विकास करती हुई प्रकृति के नियमों के अनुसार उन्नत होती है। मनुष्य प्रकृति का ही एक अंग है इसलिए प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ-साथ वह भी बदलता है। उसकी सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी हर समय बदलने के लिए तैयार रहने और अपने आपको परिस्थितियों में ढालते रहने की है। इसके अतिरिक्त राष्ट्र का कोई भी कानून ईश्वर की ओर से बनकर नहीं आता बल्कि सोसाइटी उसे अपने लिए लाभकारी समझ कर बनाती है और हानिकारी समझ कर छोड़ देती है। यह वे विचार थे जिन्होंने धार्मिकता को राजनीति से खारिज कर दिया और जिनके आधार पर राष्ट्र-हितकारी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण

स्वीकार किया गया। और इन्हीं विचारों के विस्तार पाने पर १९वीं शताब्दी में रूस में बालशेविक क्रान्ति हुई जिसका व्यापक स्वरूप वहाँ का वर्तमान पंचायती शासन है। इन क्रान्तियों से उत्साहित होकर वर्तमान तुर्की के जन्मदाता कमाल अता-तुर्क ने वहाँ की साम्प्रदायिक शासन की जड़ें खोद कर उसके स्थान पर राजनीतिक और आर्थिक आधार पर प्रजातंत्र की नींव डाली और इस्लामी अंध विश्वास को राजनीति से निकाल बाहर किया।

इन सब बातों के कहने से मेरा मतलब यह है कि अब जब कि दुनिया बदल चुकी है हिन्दुस्तान को भी बदलने की आवश्यकता है और उसी दृष्टिकोण से देखने की आदत डालनी है जिसके द्वारा अन्य देशों ने उन्नति की है। क्योंकि ऐसा करने से ही पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के झगड़े मिट सकते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जहाँ तक हिन्दूधर्म का सम्बन्ध है सर राधा कृष्णन के कथनानुसार उसका आधार सत्य सिद्धान्तों पर है। हिन्दुत्व न कोई सम्प्रदाय है न अंधविश्वास बल्कि उसमें तर्क का अधिक स्थान है, उसमें परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होने की शिक्षा दी गई है। इस धर्म में पर्याप्त लचीलापन (Flexibility) है। यद्यपि यह ठीक है कि समय के साथ-साथ इसमें कुछ कठोरता भी आ गई है। जिसे दूर करने की आवश्यकता है और वह न केवल हिन्दुस्तान की सामूहिक उन्नति के लिए वरन् हिन्दुओं की अपनी उन्नति के लिये भी आवश्यक है और समझदार हिन्दुओं की बहुसंख्या इसके सुधार और संशोधन की दृढ़ इच्छा रखती है और यदि मुसलमान राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में अपने बुनियादी दृष्टिकोण में परिवर्तन करें तो उन दुर्गुणों का दूर हो जाना स्वाभा-

विक है। हिन्दुओं की सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि वे यह सोचना छोड़ दें कि 'मनुष्य जीवन का कोई भी महत्व नहीं, यह संसार माया-जालमात्र है और इसका उद्देश्य जीवन-मुक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं।' यह विचार पराजित भावनाओं से भरे हुए और उन्नति के राह के रोड़े हैं, इनके द्वारा ही हिन्दू जाति महानता के शिखर से हीनता के गड्ढे में जा गिरी। हिन्दुओं की सामूहिक उन्नति तब तक संभव नहीं जब तक यह पराजित भावनाएँ सर्वथा नहीं मिट जातीं। जहाँ यूरोप का दुर्भाग्य यह है कि वहाँ के लोगों में वैज्ञानिक और शारीरिक शक्ति तो है किन्तु हृदय की शान्ति का कोई साधन नहीं, वहाँ हिन्दुस्तानियों और विशेष कर हिन्दुओं का दुर्भाग्य यह है कि इनमें हृदय की शांति तो श्मशान की शाँति से भी अधिक है, किंतु सांसारिक उन्नति करने की भावना बहुत ही कम। इसलिए हिन्दू यदि अपने आप में भी उन्नति करना चाहते हैं तो उन्हें इन बातों को समझना होगा। इस प्रकार न केवल वह स्वयं उन्नति करेंगे और मज़बूत बनेंगे बल्कि शक्ति और भक्ति के गठबंधन द्वारा संसार के सामने फिर वही आदर्श उपस्थित कर सकेंगे जो अतीत काल में उन्होंने किया था।

कानूनी समस्या का हल

कानूनी समस्या के सम्बन्ध में इस समय बहुत पेचीदगी दिखाई देती है किंतु मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि इस से भी अधिक पेचीदगी और कठिनाई के होते हुए भी यदि रूस, अपने उद्योग में सफल हो सकता है तो हिंदोस्तान भी हो सकता है। इस प्रसंग में इंडियन पोलिटिकल साइंस कांफ्रेंस के सभापति प्रिंसिपल गुरुमुख निहाल सिंह ने इस समस्या का हल यह बतलाया है

कि देश में विभिन्न प्रजातंत्रों का एक शोशलिस्ट संघ बना दिया जाय। यद्यपि मैं सिसिरल महोदय के समान राजनीति-विज्ञान का विशेषज्ञ नहीं हूं, किन्तु उसके एक विद्यार्थी के रूप में जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ वह यह है कि देश में नेशनल (राष्ट्रीय) सिद्धांत पर विभिन्न प्रजातंत्र-फेडरल रिपब्लिक—कायम की जायँ। इस संबन्ध में मेरा विचार वही है जो हिंदू सभा के कानपुर अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा उपस्थित किया गया था यद्यपि वह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। फिर भी मैं उसका उल्लेख यहाँ कर देना चाहता हूँ—क्यों कि अपने विचारों के अनुसार मुझे यह हिंदुस्तान के कानूनी मसले का हल समझ पड़ता है। वह प्रस्ताव यह है—

"हिंदू सभा इस अवसर पर अपने संबन्ध में हर प्रकार की भ्रांतियों को दूर करने के लिए यह घोषणा करती है कि न भूतकाल में और न अब उसका ध्येय हिंदूराज्य रहा है। उसका ध्येय ऐसा अखंड और प्रजातंत्र हिन्दुस्तान है जिसमें राजनीतिक और सामाजिक अल्पमतों को हर प्रकार के संरक्षक प्राप्त होंगे। अखंड हिंदुस्तान से उसका आशय हर हिंदुस्तानी की मातृभूमि हिंदुस्तान की एकता और उसकी सुरक्षा और उस शांति-व्यवस्था से है जो राजनीतिक अधिकारों के संबन्ध में असली समझौते से निश्चित होते हैं। साथ ही वे उस आर्थिक आत्म-निर्भरता पर आधारित हैं जो विभिन्न दलों और उनके हितों को एक दूसरे पर विश्वास करने की प्रेरणा करती है और अंत में इसका आशय उस स्वतंत्रता से है जो अपने-अपने सम्प्रदाय और सभ्यता-संस्कृति के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने के लिए प्राप्त होनी चाहिए। हमारी कल्पना के इस

हिंदुस्तान में मज़दूर और पूंजीपति का कोई प्रश्न नहीं होगा। मज़दूरों और किसानों को राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी समझा जायगा और उन्हें समाज में पूरा सम्मान और समानता के अधिकार प्रदान किए जाने के अतिरिक्त शासन-व्यवस्था में भी उचित भाग प्राप्त होगा। वैयक्तिक व्यापार करने की स्वतन्त्रता होगी, किंतु शासन की ओर से उस पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाए जायँगे जिनके द्वारा उनकी प्रतिस्पर्धा को रोका जा सके और उस शोषण की समाप्ति की जा सके जो उनके (पूँजी-पतियों के) द्वारा की जा रही है। वैसे तो भारत के भावी शासन-विधान का निर्माण युद्ध के उपरान्त जनता की प्रतिनिधि सभा के विशेषज्ञ करेंगे—किन्तु हिन्दू सभा यह सिफ़ारिश करती है कि यह कानून फेडरेशन के सिद्धान्तों पर आधारित हो और उसके अनुसार हिन्दुस्तान को विभिन्न प्रजातन्त्रों की फेडरल रिपब्लिक बना दिया जाय और किसी भी प्रजातन्त्र को पृथक होने का अधिकार न दिया जाय। वरन् इसके विरुद्ध एक सुदृढ़ केन्द्र के द्वारा इनमें अधिक से अधिक एकता स्थापित की जाय।"

मैं नहीं समझता कि इससे अधिक अनुकूल और अधिक उपयोगी कोई घोषणा हो सकती है। इस घोषणा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और मानवीय अधिकार ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं—जिनके होते हुए बहुमत और अल्पमत का प्रश्न ही नहीं उठता। इस बात को यदि हिन्दुस्तानी समझ लें तो पारस्परिक अविश्वास और घृणा की वे दुर्भावनाएँ दूर हो सकती हैं जो इस समय उत्पन्न हो गई हैं।

इस प्रसंग में अब और अधिक न कहता हुआ केवल एक बात और मुस्लिम लीग से कह कर इस निबन्ध को समाप्त करूँगा। जिन विचारों को सड़े समझ कर शेष संसार शीघ्रता से छोड़ रहा

है, उन्हें स्वीकार करने के लिए मुसलिम लीग हिंदुस्तानियों को बाध्य करे और यह बात भी अनुभव करे कि जो बात फिलस्तीन में न हो सकी हिंदुस्तान में उसके होने की कोई संभावना नहीं (फिलस्तीन के यहूदियों ने मुसलमानों से पृथक होमलैंड की माँग कर रखी है। जिसे मुसलमान स्वीकार नहीं करते) और जहाँ संसार के और देश केवल आर्थिक और राजनीतिक आधार ही पर विभिन्न देशों की यूनियन या फेडरेशन बनाने की बात सोच रहे हैं वहाँ मुस्लिम लीग भी हिंदुस्तान में इसी आधार पर स्थित राष्ट्रीय शासन-व्यवस्था स्थापित होने में सहायक सिद्ध हो।

अब मैं प्रत्येक देशभक्त हिन्दुस्तानी से अपील करूँगा कि उसे अन्तिम समय तक पाकिस्तान के विरुद्ध लोहा लेने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि देश के विकाश, उन्नति और परिवर्तन के मार्ग में वह एक भारी बाधा है—ऐसी बाधा कि जिसके आधार पर कोई समझौता सम्भव नहीं। हमारा विश्वास स्वाधीन भारत और अखंड हिन्दुस्तान है। यह विश्वास तर्कों के आधार पर है और इसमें किसी प्रकार की कमज़ोरी न आनी चाहिए।

One is our faith
Love of Motherland
One is our will
Te make great
The People of India
The members of this great nation
Leader! we are ready
Come and lead us.

इस समय हमारा आदर्श एक है। वह है मातृभूमि से प्रेम।
हमारी इच्छा एक है और वह है हिंदुस्तान की जनता को, इस
महान जाति के सदस्यों को महान बनाने की।
नेता जी, आइए हम तैयार हैं, तुम हमारा पथ प्रदर्शन करो।"

स्टेलिन-ग्राड में लड़ने वाले सैनिक के ये शब्द हमारे हृदयों में अंकित होने चाहिए:—

"संसार में मित्र मिल सकते हैं—पत्नियाँ मिल सकती हैं, किंतु माता नहीं मिलती! माता संसार में एक ही होती है। माता से प्रेम इसलिए किया जाता है कि वह माता है। यद्यपि मैं श्वेत रूस से संबन्ध रखता हूँ किंतु संपूर्ण रूस और स्टेलिनग्रेड के समरांगण में मैं अपनी इस माता की रक्षा कर रहा हूँ।

इस प्रसङ्ग को मैं इन शब्दों के साथ समाप्त करूँगा कि पाकिस्तान संबन्धी कोई भी समझौता वर्सेल्स संधि से कम दुखदायी न होगा। यदि हिंदुस्तान की कठिनाइयों का स्थायी समाधान अभीष्ट है तो वह राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र में ही है। इसके लिए जातीय एकता का जो संबन्ध है, प्रो० हेरेल्ड जे० लस्की के शब्दों में निहित है जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'व्यवहारिक और सैद्धांतिक शासन-व्यवस्था' (State in practice and theory) में प्रकट किए हैं:—

Unity is not there as some thing given. It is made as men discover it, by seeking similar ends.

अर्थात मेल-मिलाप कोई बनी-बनाई वस्तु नहीं है जो इतनी सरलता से मिल जाय। इसे मनुष्य अपने सम्मिलित उद्देशों की ढूँढ़-खोज कर के ही प्राप्त करते हैं।"

———

परिशिष्ट

(१)

कम्युनिस्ट और पाकिस्तान

पाकिस्तान के बारे में सब से अधिक आश्चर्यजनक और दिलचस्प बात कम्युनिस्टों का दृष्टिकोण है, क्योंकि ये कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौते और मुसलमानों के लिये आत्म-निर्णय के अधिकार की माँग कर के प्रत्यक्ष रूप में एक ऐसी बात का समर्थन करते हैं जो उन के मौलिक सिद्धान्तों के ही विपरीत है। उन का ध्येय भारत में, आर्थिक क्रान्ति लाना और ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित करना है जिस में धर्म को केवल अमल दखल ही हासिल न हो—बल्कि उस में उस का कोई अस्तित्व भी न हो। राष्ट्र के बारे में उन का दृष्टिकोण पूर्णतः सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक है, परन्तु इस के विपरीत मुसलमानों के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार—व पाकिस्तान का मतलब—शुद्ध शासन-प्रणाली अर्थात इस्लामी राष्ट्र स्थापित करना है। यदि वे सामूहिक रूप में किसी प्रान्त को, संघ से पृथक होने का अधिकार देने का समर्थन करें तब तो उन का यह पक्ष समझ में आ सकता है! परन्तु मुसलमानों को धर्म के आधार पर एक विशेष सम्प्रदाय होने के कारण—आत्मनिर्णय का अधिकार देने की आड़ में, पाकिस्तान का समर्थन आश्चर्यजनक है। रूस में भी मुसलमान काफी संख्या में बसते हैं। उन के अतिरिक्त और भी ऐसे लोग आबाद हैं जिन की राष्ट्रीयता विभिन्न है। किन्तु सोविएट सरकार ने केवल इसी कारण आत्मनिर्णय का अधिकार कभी नहीं दिया। १६१८ में जब प्रथम बार सोविएट रूस का

शासन-विधान बनाया गया तो उन में साइबेरिया के राज्यों को, संघ से पृथक होने का अधिकार दे दिया गया। परन्तु १६२२ में जब विधान में संशोधन हुआ तो वे भी संघ में शामिल हो गए और पृथक होने के अधिकार का अन्त हो गया।

मेरा अभिप्राय यह है कि कम्युनिस्ट मित्र पाकिस्तान का समर्थन कर के एक ऐसी चीज को पुनर्जीवित करने में सहायता दे रहे हैं जो उन के सिद्धान्त के सरासर प्रतिकूल है। और क्या वे नहीं जानते कि यदि वर्तमान भारत हिन्दुस्थान और पाकिस्तान में बदल गया, अर्थात् यहाँ धार्मिक शासन-प्रणालियाँ स्थापित हो गईं, तो इस का प्रभाव अनिवार्यतः दूसरे देशों पर भी पड़ेगा। विशेषतः उन देशों पर, जिन में मुसलमान काफ़ी संख्या में आबाद हैं, जैसे चीन और रूस। जहाँ वे करोड़ों की संख्या में आबाद हैं। पाकिस्तान के बारे में यह समझना कि यह क्षणिक और स्थानीय-नीय प्रश्न है ग़लत है। इस का प्रभाव निश्चय ही दूर तक जाने वाला होगा। अतएव मैं कम्युनिस्ट मित्रों को यह परामर्श दूंगा कि वे मुस्लिम जनता में लोकप्रियता प्राप्त करने का कोई और साधन सोचें। साधारणतःराजनीति में और विशेषतः खिलाफ़त आन्दोलन में महात्मा गांधी से हुई भूल से लाभ उठाएँ, अन्यथा वर्तमान् अवस्था में तो वह भारतीय जनता की मनोवृत्ति को बदलने की बजाए—उसे मज़ त कर रहे हैं।

भारत में क्रान्ति लाने के लिए सर्वसाधारण को वर्तमान निम्न स्तर से उच्च स्तर पर ले जाने की आवश्यकता है।

(२)

पाकिस्तान के विरुद्ध संसार का मत

वर्तमान काल में, जब कि युरोप के बालकान देशों और

अन्य छोटे राष्ट्रों का परिणाम हमारे सामने है। उसे सामने रखते हुए पाकिस्तान की माँग करना और उसे विवाद का विषय बनाना कुछ अनोखा सा जान पड़ता है। परन्तु मुस्लिम लीगी नेताओं की कृपा से हमारे देश में जो स्थिति उत्पन्न हो गई है— उस के प्रकाश में ऐसा करना ही पड़ता है। जैसा कि मैंने अभी कहा पाकिस्तान का अर्थ शुद्ध इस्लामी राष्ट्र स्थापित करना है जो संसार में किसी अन्य देश में मौजूद नहीं है। यहाँ तक कि मिश्र, ईरान, और तुर्की आदि इस्लामी देशों में भी नहीं है। पहले था परन्तु अब उसे असामयिक और अनपयुक्त समझ कर मिटा दिया गया है। अब वहाँ शुद्ध राष्ट्रीय सरकारें हैं।

अब मैं आगे उन देशों का संक्षेप में वर्णन करूँगा जिन में विभिन्न भाषा भाषी, नस्ल और राष्ट्रीयता वाले लोग बस्ते हैं और पहले विभक्त थे पर बाद में संगठित होगए। मैं उन देशों का वर्णन भी करूँगा जहाँ प्रायः इसी अधार पर बँटवारे का प्रश्न पैदा हुआ, परन्तु सफल न हुआ।

इंगलैंड और स्काटलैंड

इस सिल सिले में मैं सब से पहले इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड का उदाहरण देता हूँ। १२८६ में स्काटलैण्ड इंगलैण्ड से बिलकुल अलग था। उसमें विभिन्न कबीले आबाद थे, जिन्होंने धीरे धीरे संगठित और एक होकर बादशाहत कायम कर ली। एडिन्बरा में राजधानी बनाई गई। इंगलैण्ड के राजा देर से स्काटलैण्ड पर अपना अधिकार जमाए आरहे थे। एडवर्ड प्रथम ने १२८६ में इस अधिकार की प्राप्ति के लिए स्काटलैण्ड पर आक्रमण किया और अधिकार कर लिया। १३१६ में जब इंगलैण्ड फ्रांस से लड़ रहा था, स्काटलैंड ने मौका देख कर स्वतन्त्रता बहाल करली। इस के बाद २-३

सौ साल तक दोनों देशों में संघर्ष चलता रहा। आखिर १६०३ में दोनों राजपरिवार मिल गए। एक राजा के अधीन हो गए। इतना होने पर भी दोनों देशों की प्रजा की सभायें अलग अलग रहीं। स्काटलैण्ड की प्रजा-सभा एडिन्बरा में और इंगलैण्ड की लन्डन में।

यद्यपि इस मेल का आधार प्राकृतिक था फिर भी उनके, संबन्ध बेहतर हो गए। प्रतिकूल अवस्था होने पर १७०४ तक कोई गड़बड़ी न हुई उसी साल स्काटलैण्ड की प्रजा-सभा ने पृथक होने की घोषणा कर दी। इसे रोकने के लिए एक संयुक्त पञ्चायत बिठाई गई, ताकि मेलकर कोई नया मार्ग ढूँढ़ा जाय। १७०७ में इस पञ्चायत ने मार्ग ढूंढ़ निकाला। तदनुसार दोनों आपस में मिल गए। और दोनों देशों का नाम ग्रेट ब्रिटेन रखा गया। स्काटलैण्ड ने एडिन्बरा में अपनी प्रजा-सभा तोड़ दी और उसे अपनी आबादी के अनुपात में इङ्गलैण्ड की प्रजा-सभा और सामन्त-सभा में प्रतिनिधित्व किया गया। प्रजा-सभा के सदस्य संख्या ६०० हैं और उनमें कुल ७४ स्काट हैं। सामन्त-सभा में उनकी संख्या १६ है।

१७०७ के बाद, स्काटलैण्ड ने पृथकता या स्वराज्य की कभी मांग नहीं की। नहीं कभी ५० फीसदी की मांग की, जैसा कि मुस-लिम लीग के कायदे आजम मिस्टर जिन्ना, भारतीय एकता के बदले करते हैं। यह इंगलैंड और स्काटलैंड जो ५०० साल तक शत्रु रहे - अब एक हैं। एक दूसरे में नीरखीर की तरह मिल गए हैं। कोई सोच नहीं सकता कि वे दो थे।

स्वीजरलैण्ड:—

अब स्विज़रलैण्ड की ओर आइए। यहाँ कई नस्लों के लोग बसते हैं। उनकी अपनी कोई राष्ट्रीय भाषा नहीं है। प्रायः जर्मन

बोली जाती है। हाँ, कुछ जगह फ्राँसीसी भी और इटालियन भी। इसके अतिरिक्त वहाँ धार्मिक एकता भी नहीं है। उसके कुल २२प्रान्तों में से १२ में प्रोटैस्टैण्ट ईसाइयों का ज़ोर है और शेष १० में रोमन कैथोलिकों। का इस तरह भाषा नस्ल और धर्म—जो एक राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक हुआ करते हैं—वहाँ मौजूद नहीं है। इतने पर भी वहाँ के लोग संगठित हैं। और संभवतः सारे युरोप में सब से अधिक समता और राष्ट्रवादी स्विजरलैण्ड की कुल जन-संख्या करोड़ से कम है।

वहाँ राष्ट्रीयता का श्री गणेश आज से ६०० वर्ष पहले हुआ था जब कि राज्य के ३ (पर्वतीय) प्रदेशों ने मिलकर संघ बनाया। इस तरह संघ पूर्ण हो गया। इसे १६४८ में विदेशी आक्रमणों के मुकाबिले में पूर्वीय फेलिया संधि के अनुसार नियमित रूप से स्वीकार कर लिया गया। परन्तु १७६८में फ्रांस ने इसकी स्वतन्त्रता छीन ली। वाटरलू में नैपोलियन की पराजय तक वह फ्रांस के अधीन रहा। इसके बाद संघ फिर बहाल हो गया। परन्तु १७४८ में कैथोलिकों ने इस आशंका से प्रेरित होकर कि कहीं प्रोटैस्टैण्ट हमारे स्वत्वों और अधिकारों पर छापा न मार लें अपना अलग संघ बना लिया। इतना ही नहीं, वरन् उन्होंने फ्रांस और आस्ट्रिया जैसी कैथोलिक जातियों से सहायता भी माँगी। इससे प्रोटेस्टैण्टों में भारी अशान्ति पैदा हुई और उन्होंने कैथोलिकों को अपना संघ भङ्ग करने की आज्ञा देदी। कैथोलिकों ने विरोध किया। परिणाम स्वरूप गृह-कलह शुरू हो गई। अन्त में कैथोलिकों की पराजय हुई और उन्होंने अपना संघ भङ्ग कर दिया। इस गृह-कलह का एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि स्विजरलैण्डवालों को यह मालूम हो गया कि हमारा संघ निर्बल है, और दृढ़ बनाना

चाहिए। अस्तु नया विधान बनाने के लिए एक सभा बनाई गई। यह नया विधान १८४८ में तय्यार हुआ, इसके अनुसार वास्तविक संघ की स्थापना हुई। १८७४ में इसमें कुछ संशोधन हुए। अब वहाँ प्रजातन्त्र संघ है। अल्पमतों को जो सुविधाएँ और संरक्षण प्राप्त हैं वे उन्हीं पर सन्तुष्ट हैं और उन्हें कभी अलहदगी का विचार नहीं आता।

अमेरिका

अमेरिका के बारे में पहले भी काफी कुछ चर्चा कर आया हूँ। यहाँ केवल इतना ही कहूँ कि राष्ट्रीयता के विचार से अमेरिका शुद्ध राष्ट्रीय देश नहीं है। यह ४८ राज्यों का संघ है और एक महाद्वीप है। इसमें अनेक नस्लों-धर्मों के और विविध भाषा भाषी लोग आबाद हैं। इनका प्राचीन इतिहास पारस्परिक रक्तपात और लड़ाई झगड़ों का इतिहास है। परन्तु यह सही है कि इतने मतान्तर होने पर भी अब उन्होंने अपने आप को एक राष्ट्रीयता में पिरो लिया है। अब उन्हीं अङ्गरेजों, जर्मनों और फ्रांसीसियों ने जो किसी समय आपस में लड़ा करते थे और अब भी लड़ते हैं—आपसी झगड़ों को भुला कर अमेरिका को ही अपना देश बना लिया है। अब उनकी मातृ-भूमि इङ्गलैण्ड, फ्रांस या जर्मनी नहीं बल्कि अमेरिका है। अब उनका स्वार्थ एक है। उनके देशों के लोगों से जिनसे उनके रक्त का सम्बंध है जिन से उनकी भाषा और नस्ल मिलती है, सभ्यता और संस्कृति मिलती है—राष्ट्रीय सम्बन्ध जोड़ लिए हैं। अब वे उन देशों को अपनी मातृ-भूमि नहीं समझते, यदि यही गुण भारतीय मुसलमानों में पैदा हो जाए, तो भारत की तमाम गुत्थियाँ सुलझ जाएँ। यदि वे 'पान इस्लाम' के फैडरेशन में भाषा,

नस्ल और राष्ट्रीयता अलग अलग होने पर भी रह सकते हैं, इस्लामी देशों की भाषाएँ अलग अलग हैं जैसे ईरान की फारसी, टर्की की टर्किश और मिश्र की मिश्री इसी तरह उनकी नस्ल और राष्ट्रीयता भी अलग अलग है, और फिर भी वे मिल कर रह सकते हैं तो निश्चय ही भारत के हिन्दुओं के साथ भी रह सकते हैं।

परन्तु हाँ १८६० में अमेरिका में भी इस के बँटवारे का सवाल पैदा हुआ। दक्षिण की ११ रियासतों ने शेष उत्तरी रियासतों से अलग हो कर अपना संघ स्वतन्त्र बना लिया। परन्तु तत्कालीन अमेरिकन राष्ट्रपति मि० अब्राहमलिकन ने अमीरकन संघ के तोड़ने की बजाए गृह-युद्ध को विशेषता दी और किसी भी रियासत को पृथक होने का अधिकार देने से इन्कार कर दिया। फलतः अप्रैल १८६१ में वहाँ गृह-युद्ध शुरू हो गया। जो ४साल जारी रहा। आखिर दक्षिण की रियासतें पराजित हो गईं और अब्राहमलिकन को अमेरिका के संघ को अक्षुण्ण रखने में सफलता मिली। आज संघ का परिणाम है कि हम अमेरिका को इतना धनी, सम्पन्न और शक्ति शाली देख रहे हैं। यहाँ तक कि आज उसने इङ्गलैण्ड की विशिष्ठता का भी अन्त कर दिया है। यही नहीं. आज इंगलैण्ड उसका ऋणी है और अनेक बातों में उस पर अवलम्बित है। भारत भी यही विशेषता प्राप्त कर सकता है यदि उसकी एकता की रक्षा हो जाए और इस काम के लिए किसी अब्राहमलिकन के प्रादुर्भाव की आवश्यकता है।

फिलस्तीन

अब मैं फिलस्तीन को लेता हूं। यद्यपि पहले भी सरसरी तौर पर मैं इसकी चर्चा कर आया हूं, परन्तु चूंकि वहां भी बहुमत और अल्पमत का प्रश्न वैसा ही विकट है जैसा कि भारत में, इस लिए हम भारतीयों के लिए इसकी विशेष महत्ता है।

फिलस्तीन अरब 'का एक छोटा सा देश है। इसकी कुल आबादी १० लाख के लगभग है। अधिक संख्या अरबी मुसलमानों की है। परन्तु ईसाई और यहूदी भी बसते हैं। यह ब्रिटिश रक्षित देश है। इंगलैण्ड ने भारत की तरह, यहाँ भी अल्प संख्या का प्रश्न पैदा कर रखा है। अरबी मुसलमान स्वराज्य चाहते हैं और जिस तरह भारतीय मुसलमान "हिन्दूराज" के भय से भारत की स्वतन्त्रता का विरोध कर रहे हैं उसी तरह फिलस्तीन में यहूदी "अरबराज" के डर से उसकी स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं। इसी लिए उन्होंने प्रायः फिलस्तीन की स्वतन्त्रता के विरोध में अंगरेजों का साथ दिया है। इंगलैण्ड ने इससे लाभ उठाकर "अरब राष्ट्रीयता" के मुकाबिले में यहूदियों की साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता को उकसाया, जैसा कि अब भारत में भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध पाकिस्तान के रूप में मुसलमानों की साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता को उकसाया जा रहा है।

परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि तमाम गुलाम देशों में साम्राज्यवाद की एक ही सी चाल है। जिस तरह हिन्दुस्तान में भारतीय मुसलमानों को साम्प्रदायिक संरक्षणों का लालच देकर वर्तमान 'मुस्लिम राष्ट्रीयता' की नींव रखी उसी तरह पिछले यूरोपियन महायुद्ध में जब ब्रिटिश सेना ने फिलस्तीन पर आक्रमण किया और जब वे यरोशलम की ओर बढ़ रही थीं तो ब्रिटिश सरकार ने यहूदियों की भावना और मित्रता प्राप्त करने के लिए एक घोषणा की जो 'बोलफोर घोषणा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें यहूदियों को यह लालच दिया गया कि फिलस्तीन को उनका प्रदेश बना दिया जायगा। चूंकि इस घोषणा और इसके अनुसार काम होने से उन लोगों को हानि पहुँचने की संभावना थी जो वहाँ

पहले से आबाद थे, इस लिए अरबों ने तो इसका विरोध किया ही परन्तु साथ ही वहाँ के दूसरे निवासियों ने भी विरोध किया। इन दूसरे लोगों में भारतीय मुसलमान भी हैं। सन् ३७ और ३८ में यहूदियों को जर्मनी तथा अन्य देशों से भारी संख्या में निकाला गया तो वे सब के सब फिलस्तीन में आकर आबाद होने लगे। अब अरबों में इस आशङ्का ने ज़ोर पकड़ा कि कहीं "बोलफोर योजना" को अमली शकल न दे दी जाए। इससे उनमें असन्तोष बढ़ा और भारी आन्दोलन उठा। दमनचक्र भी खूब चला। भारत के मुसलमानों ने भी दबी ज़बान से इस दमन का विरोध किया। संवत् १९३८ में ब्रिटेन ने वहाँ एक कमीशन भेजा। उसके पास भी प्रायः वैसी ही योजना थी जैसी सर क्रिप्स भारत लेकर आए थे। अर्थात् देश का बँटवारा। कमीशन ने सिफारिश की कि देश को ३ भागों में बाँट दिया जाए। एक पर अरबों का अधिकार हो। दूसरे पर यहूदियों का और तीसरे पर अङ्गरेज़ों का। परन्तु जैसे भारत की सारी राजनीतिवालों ने विभिन्न कारणों के आधार पर क्रिप्स योजना को ठुकरा दिया था वैसे ही फिलस्तीन में भी अरबों और यहूदियों ने उसे ठुकरा दिया। यहूदियों की अस्वीकृति का कारण यह था कि उन्हें इलाका कम मिलता था। इस तरह यह योजना अभी तक सिरे नहीं चढ़ी। हमें आशा है कि अरब और यहूदी आपस में मिलकर अपने देश के टुकड़े नहीं होने देंगे। मैं यहाँ यही बताना चाहता हूँ कि भारतीय मुसलमान जिस चीज़ की फिलस्तीन में निन्दा करते हैं उसे भारत में लाने का यत्न न करें। यदि उनका यह मत हो कि फिलस्तीन अरबों का देश है तो फिर उन्हें यह भी मानना पड़ेगा कि भारत हिन्दुओं का देश है। परन्तु नहीं, हिन्दू उन्हें अपना भाई और स्वदेशवासी समझ

कर उनके साथ मिल कर रहने के लिए तय्यार है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वे भारत के स्वाधीनता-आंदोलन में अरब के यहूदियों की तरह विरोधियों के हाथ में खेलना छोड़ना दें।

केनेडा

केनाडा इंगलैण्ड का उपनिवेश है। परन्तु वहाँ एक तिहाई फ्रांसीसी भी आबाद हैं। १७६२ में फ्रांस से इंगलैण्ड ने यह देश जीता था। १८४० तक यह दो भागों में बँटा रहा। १८३७ में यहां इंगलैण्ड के विरुद्ध विद्रोह हुआ तो लार्ड डरहम को केनाडा की अशान्ति दूर करने के लिए भेजा गया। उनके प्रस्ताव पर इन दोनों भागों को मिला दिया गया। और वहाँ स्वराज्य की स्थापना हो गई। अब वहाँ अङ्गरेज़ और फ्रांसीसी मिल कर रहते हैं।

जर्मनी

१८०६ में नेपोलियन के हमले से पहले जर्मनी कई रियासतों में बँटा हुआ था। इसी कारण नैपोलियन ने बहुत सा इलाका आसानी से ले लिया था। बस यही कारण था कि जर्मनी में राष्ट्रीयता और सङ्गठन का बीज अंकुरित हो गया। जर्मनों को एकता का महत्व मालूम हो गया। परिणाम स्वरूप १८१५ में आस्ट्रिया, प्रशिया और अन्य ३७ जर्मन रियासतों का एक सङ्घ बना जिसे १८६७ में बिस्मार्क ने २-३ युद्धों के बाद पूर्ण बनाया। वर्तमान जर्मनी का इतिहास १८७१ से आरम्भ होता है

जापान

जापान का इतिहास भी ऐसा ही है। १६ वीं सदी के मध्य तक वहाँ जागीरदारी का बोलबाला था, परन्तु जब उन्हें विदेशी आक्रमण का भय हुआ तो वे वर्तमान राजा के नेतृत्व में संघटित

हो गए और इस तरह स्वदेश को विदेशी आक्रमण से सुरक्षित कर लिया।

सचाई यह है कि विदेशी आक्रमण पर उनके प्रभुत्व की आशंका ही संसार के अनेक देशों की एकता का कारण दिखाई दी है। और दासता उनके लिए दैवी वरदान सिद्ध हुई जो अभी भारत के लिए अभिशाप बनी हुई है। हमें आशा करनी चाहिए कि बँटवारे कीचाल जो आयरलैण्ड के सिवाय अन्य किसी देश में सफल नहीं हुई, भारत में भी सफल नहीं होगी। परन्तु क्या भारत आयरलैण्ड बनेगा ? इसका उत्तर तो समय देगा—पर यह बहुत कुछ राष्ट्रवादी भारतीयों और विशेषतः हिन्दुओं तथा सिखों की दृढ़ प्रतिज्ञा और संकल्प पर भी निर्भर करता है।

(३)

हिन्दू नेताओं से एक प्रार्थना

कई बार यह देख कर हैरानी होती है कि एक ही भूल हर जगह दोहराई जा रही है। कांग्रेस ने भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों की संयुक्त राष्ट्रीयता से या भारतीयों की एक राष्ट्रीयता से राजनीतिक क्रान्ति लाने के लिए भरसक प्रयत्न किए। परन्तु वह अभी तक अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुई। यद्यपि इस असफलता के और भी कारण हैं, परन्तु एक मौलिक कारण यह भी है कि उसने भारत के सर्वसाधारण में राष्ट्रीय जागृति लाने के लिए भारतीयों के राष्ट्रीय चलन की उन्हीं त्रुटियों को साधन बनाया जो अतीत में भारत, विशेषतः हिन्दुओं के, पतन का कारण बनी थी। राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए आवश्यकता थी कि भारतीय सर्वसाधारण में क्रान्ति की चाह और मनोवृत्ति पैदा की जाती और उसके विभिन्न भागों को एक दूसरे के पास लाने के लिए उनकी मनोवृत्ति

बदली जाती। परन्तु खेद है कि ऐसा न किया गया। अब परिणाम हमारे सामने है। कांग्रेस ने भारतीय चलन की जिन त्रुटियों को अर्थात् भारतीय जन-साधारण के जिन राष्ट्रविरोधी भावों को उत्तेजित कर के उनमें राष्ट्रीयता लानी चाही अब वे ही उसकी राह में बाधक हैं।

इस सिलसिले में अधिक हैरानी और अफसोस की बात यह है कि वे लोग भी इसी कारण कांग्रेस का विरोध करते हैं—स्वयं भी उसी भूल का शिकार हो रहे हैं। हिन्दू सभा के बारे में विशेष रूप से यह बात १६ आने सच है। हिन्दू संघटन के लिए ऐसा बेसुरा राग अलापा जा रहा है जो कांग्रेस की ओर से हिन्दू मुस्लिम एकता के रूप में अलापा गया। जैसे—कांग्रेस ने कोई ठोस कार्यक्रम बनाए बिना पगडण्डी पकड़ी उसी तरह हिन्दू महासभा ने भी कोई योजना बनाए बिना हिन्दू सङ्घटन की नीति अपना ली। कांग्रेस ने अपने अमल से सर्वसाधारण के सामने हिन्दू मुस्लिम एकता का विचार संयुक्त शत्रु के मुक़ाबले में संयुक्त मोर्चे को रखा। उसी तरह हिन्दू सभा का तरीक़ा भी यह प्रकट करता है कि हिन्दू संघटन के बारे में उसका दृष्टिकोण 'संयुक्त ख़तरे' के मुकाबले में संघटन ही है। यही कारण है कि जहाँ भारतीय राष्ट्रीयता की तरह कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसका अस्तित्व पहले न हो, परन्तु चूंकि हिन्दू आपस में इस तरह बँटे हुए हैं कि उन्हें भी संघटित करने और एक दूसरे के समीप लाने का काम वैसा ही कठिन और महत्त्वपूर्ण है जैसा हिन्दू और मुसलमानों को। इसलिए दोनों की रूप रेखा एक ही जैसी है। हिन्दू मुस्लिम संघटन सफल हो सकता है यदि इसका आधार संयुक्त शत्रु के मुक़ाबले में एक मोर्चा बनाने की जगह भारत की स्वतन्त्रता का संयुक्त स्वार्थ हो। इसी तरह हिन्दू संघटन या हिन्दू राष्ट्रीयता

का भविष्य हिन्दुओं के अन्दर संयुक्त खतरे की रोक-थाम की जगह संयुक्त स्वार्थ की अनुभूति हो अर्थात यह भाव पैदा किया जाए कि व्यक्ति समाज के लिए और समाज व्यक्ति के लिए। राष्ट्रीय संघटन तभी सम्भव है।

जहाँ तक हिन्दुओं के वर्तमान पतन का सम्बन्ध है उसके दो कारण हैं। सम्भव है इसका कारण कुछ हिन्दुओं में हिन्दुत्व की कमी भी हो, परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। जहाँ तक सर्वसाधारण हिन्दुओं का सम्बन्ध है उनका एक कारण हिन्दुत्व की भीतरी त्रुटियाँ हैं और दूसरा कारण साधारण हिन्दुओं का हिन्दुत्व से अपरिचित रहना है। जहाँ तक पहली बात का सम्बन्ध है, वह जात पात का बन्धन और दूसरी धार्मिक तथा सामाजिक कमज़ोरियाँ अथवा निम्न प्रकार की अध्यात्मिकता और अन्ध विश्वास है। ये दोनों बातें अराष्ट्रीय हैं। इनकी उपस्थिति में हिन्दुओं के अन्दर वास्तविक राष्ट्रीयता पनप नहीं सकती। इसलिए मुझे खेद है कि हिन्दू सभा के नेताओं ने इन मौलिक और प्रारम्भिक बातों पर अभी तक ध्यान नहीं दिया। स्यात वे समझते हैं कि चूंकि इन लाईनों पर हिन्दुओं में संघटन पैदा करने का उपाय क्रान्तिकारी होने के कारण कठिन और लम्बा है और कुछ अनुदार हिन्दू उसका विरोध भी करेंगे। इसलिए वे उनके राजनीतिक संघटन पर ही ज़ोर देते हुए उनकी उपेक्षा कर देते हैं। परन्तु इस सिलसिले में उन्हें याद रखना चाहिए कि वर्तमान जात-पात और सामाजिक तथा धार्मिक कुप्रथाओं की मौजूदगी में हिन्दू संगठन यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

इस जात-पात ने हिन्दुओं के विभिन्न दलों को सामाजिक पथ में एक दूसरे से बिल्कुल अलग कर रखा है। यदि हिन्दू संसार में

संगठित जाति के रूप में जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें यह बाधा दूर करनी ही होगी।

सम्प्रति हिन्दुओं की अवस्था क्या है ! एक ओर छूत और अछूत का सवाल उन्हें सङ्गठित नहीं होने देता, दूसरी ओर जाट गैर जाट, ब्राह्मण और अब्राह्मण का प्रश्न-घातक है। दुःख और रंज की बात यही है कि वे लोग जो हिन्दू सङ्गठन को ही हिन्दुओं की तमाम शिकायतों का अमोघ और अचूक इलाज समझते हैं— इस स्थिति की उपेक्षा करते हैं। या तो वे हिन्दू सङ्गठन का मतलब विशेष श्रेणियों को एक करना ही समझते हैं—या फिर उनकी कार्य-शैली ग़लत है। कुछ भी हो, वास्तविकता यह है कि हिन्दुओं को पूर्णतः सङ्गठित करने के लिए इस विषमावस्था का अन्त हो जाना आवश्यक है। और हिन्दू सभा को इस पर ध्यान देना चाहिए। राजनीतिक सङ्गठन के लिए सामाजिक सङ्गठन आवश्यक है। यदि आज हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान अधिक सङ्गठित हैं तो इसका कारण यही है कि उनमें जात-पात न होने के कारण सामाजिक सङ्गठन अधिक है। हिन्दुओं का सामाजिक सङ्गठन न केवल हिन्दू राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक है—बल्कि सङ्गठित भारत की उन्नति के लिए भी।

हिन्दुओं को हर विचार से सामाजिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। हिन्दू राष्ट्रीयता और हिन्दुओं की भावी उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उन रूढ़ियों का अन्त कर दिया जाय जिन्हें अनेक हिन्दुओं ने मोक्ष-प्राप्ति का साधन समझ रखा है और कुछ दूसरे हिन्दुओं ने अपनी अल्पज्ञता के कारण उसकी श्रेष्ठता, सार्वभौमिकता और उच्चता को न समझ कर उससे घृणा की, जहाँ भइया भाव प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय और सामूहिक जीवन के लिए

घातक है वहां दूसरा भाव अप्रत्यक्ष रूप से। इसने हिन्दुओं के अन्दर हिन्दुत्व के लिए प्रेम-भाव का अन्त करके आत्माभिमान राष्ट्रीयताभिमान को मिटा दिया है, जो किसी गिरी हुई जाति को उठाने के लिए आवश्यक होता है।

मैं उसी चीज़ों के लिए लड़ सकता हूं जिससे मुझे प्रेम हो। प्रेम उसी से कर सकता हूँ जिसके लिए मेरे दिल में आदर का भाव हो और आदर उसी के लिए जिसके बारे में कुछ जानकारी हो। हिंदुओं में हिन्दुत्व के लिए आकर्षण के अभाव का कारण उनकी अल्पज्ञता है। अन्यथा यदि उन्हें हिन्दू धर्म का वास्तविक रूप मालूम होता—तो इस पतन का कोई कारण न था।

इन दोनों बाधाओं को दूर करने के लिए मैं कुछ दिनों से कुछ हिन्दू नेताओं पर एक ऐसी हिन्दू समिति बुलाने का ज़ोर दे रहा हूँ जिसमें हिन्दुओं के विभिन्न दलों के प्रमुख व्यक्तियों, विशेषतः हिन्दुओं में समाज-सुधार का काम करने वाली संस्थाओं के प्रतिनिधियों और हिन्दू विद्वानों को आमन्त्रित किया जाए ताकि हिन्दू सङ्गठन या हिन्दुओं को सामाजिक एकता के सूत्र में पिरोने के लिए कोई विशद् कार्यक्रम बनाया जा सके। एक ऐसी विद्वत्परिषद नियत की जाए जो आधुनिक हिन्दू समाज की आवश्यकताओं के अनुसार पुरानी स्मृतियों के प्रकाश में नई स्मृति बनाए। निस्सन्देह स्मृति आवश्यकताओं और वातावरण के अनुसार बदलती रही हैं।

यह ठीक है कि कुछ धार्मिक सस्थाएँ पहले ही यह काम कर रही हैं। परन्तु आवश्यकता यह है कि इस काम को अधिक लगन और विवेकपूर्वक किया जाए। यह काम हिन्दू महासभा जैसी कोई बड़ी संस्था ही कर सकती है। इससे हिन्दू सभा केवल राजनीतिक दल ही न रह जायगी वरन् राष्ट्रीय संस्था बन जायगी; और यही

बनना चाहिए। मेरे विचार में हिन्दू सभा की जितनी आवश्यकता समाज सुधार के काम के लिए है उतनी आवश्यकता राजनीतिक काम के लिए नहीं है। सरकारी नोकरियों और कौंसिलों में हिन्दुओं को एकाध स्थान अधिक दिला देने से हिन्दुओं को सङ्गठित नहीं किया जा सकता। यह काम इससे बहुत ऊंचा है। प्रत्येक हिन्दू नर नारी आबाल-वृद्ध में क्रान्ति की चाह पैदा करने की आवश्यकता है।

आर्य नेताओं से

इसी सिलसिले में मुझे आर्यसमाजी नेताओं से भी एक निवेदन करना है, जिन्होंने इस समय आर्यसमाज को हिन्दू समाज में क्रांति और राष्ट्र-निर्माण करने वाली संस्था न रहने दे कर एक साधारण संस्था बना दिया है। महर्षि दयानन्द का उद्देश्य हिन्दुओं को हर तरह के अन्ध-विश्वास, कुप्रथाओं और रूढ़ियों से मुक्त करके उनके अन्दर क्रान्ति लाना, क्षमता पैदा करना और निरोग राष्ट्र बनाना था, परन्तु इस समय आर्यसमाज अपने आदर्श से गिर चुका है। और यह पतन उस समय तक जारी रहेगा जब तक इसे वर्तमान अवस्था से निकाल कर उसी प्रारम्भिक रूप में नहीं लाया जाता जिसमें महर्षि स्वामी दयानन्द ने इसकी स्थापना की थी। वर्तमान आर्यसमाज से दयानन्द या श्रद्धानन्द पैदा करने की आशा नहीं है। ऐसी बात मैं कायरता वश नहीं कहता—वरन् वास्तविकता के आधार पर। ब्यौरे में न जाते हुए मैं आर्य नेताओं से इतना ही कहूंगा कि वे आर्यसमाज को जीती-जागती संस्था बनाएँ जिसके अग्निस्फुलिंगों से सामाजिक कुप्रथाएँ, रूढ़ियाँ और अंधविश्वास जलकर भस्मसात हो जाएँ और इस अग्नि-परीक्षा के

बाद जो हिन्दू समाज दिखाई दे वह वही हो जिसका महर्षि दया-नन्द ने स्वप्न लिया है। जब तक सामाजिक कुप्रथाएँ मौजूद हैं आर्यसमाज का काम अधूरा रहेगा। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य भी अधूरा रहेगा। आर्यसमाज का काम राष्ट्रीय संघ का निर्माण करना है अन्य भवनों का नहीं। मैं चाहता हूं कि इस दृढ़ सचाई का अनुभव किया जाए।